प्रकाशकीय नोट

यह लेखक की अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है जिसे पृष्ठ संख्या कम रखने के ख्याल से कहीं-कहीं थोड़ा संक्षिप्त कर दिया गया है।

अनुवादक गिरिजा कुमार सिन्हा

२ रुपये ५० नये पैसे

डी पी सिनहा द्वारा न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस रानी झांसी रोड नई दिल्ली में मुद्रित और उन्हीं के द्वारा पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लिमिटेड नई दिल्ली की तरफ से प्रकाशित।

अध्याय-सूची

अपनी बात

बहुत से प्रमुख गांधीवादियों का कहना है कि "साम्यवाद से हिंसा अलग कर दी जाय तो वह गांधीवाद है।" क्या यह सही है? या यह सही है जैसा कि कई अन्य प्रमुख गांधीवादी और सभी मार्क्सवादी कहते हैं, कि गांधीवाद मार्क्सवाद-लेनिनवाद से गुणात्मक रूप से भिन्न वस्तु है।

हमारे देश के भविष्य में दिलचस्पी रखने वाले सभी लोगों में उपरोक्त प्रश्न को लेकर निश्चय ही काफी वादविवाद होगा। क्योंकि इस सवाल के सही उत्तर पर ही हमारी यह समझदारी निर्भर करती है कि समाजवाद की ओर बढ़ते हुए हमारे देश को कौन-सा रास्ता अपनाना है।

प्रकट है कि इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए गांधीवाद और मार्क्सवाद दोनों के मूल सिद्धान्तों का खूब अच्छी तरह अध्ययन करना चाहिए। मार्क्सवाद का अध्ययन करना आसान है क्योंकि उसके विषय में प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। इसके अलावा एंगेल्स की समाजवाद—काल्पनिक और वैज्ञानिक, लेनिन की कार्ल मार्क्स और स्तालिन की द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद आदि पुस्तकों में हमें मार्क्सवाद के मूल सिद्धान्तों का संक्षिप्त सार मिल जाता है। लेकिन गांधीवाद का अध्ययन करना इतना आसान नहीं है। इसके लिए तो महात्मा गांधी की समूची जीवनकृति का परिशीलन करने की आवश्यकता है उनके भाषणों और लेखों को जिनके कुल कई हजार पृष्ठ बनते हैं ध्यानपूर्वक पढ़ने की जरूरत है। उसके बाद ही गांधीवाद

का मूल्यांकन किया जा सकता है। गांधीवाद के मूल तत्वों का कोई संक्षिप्त सारांश अभी तक देखने में नहीं आया।

ऐसी स्थिति में हम यही कह सकते हैं कि श्री तेन्दुलकर और श्री प्यारेलाल लिखित गांधी जी की जीवनियों को पढ़ें जिनमें हमें गांधी जी के विचारों और उनके कार्मों की झांकी मिलती है।

गांधीवाद के अध्ययन में योगदान करने के विचार से प्रेरित होकर मैंने १९५४ में महात्मा गांधी के जीवन और उनकी शिक्षाओं की एक समीक्षा तैयार करनी आरम्भ की। श्री तेन्दुलकर लिखित आठ जिल्दों में गांधी जी की जीवनी के प्रकाशन ने ऐसा करने का सुयोग प्रदान किया। इस पुस्तक की समीक्षा करते हुए भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सैद्धान्तिक मासिक मुखपत्र न्यू एज में एक लेखमाला लिखी गयी। इस लेखमाला का अन्तिम लेख १५ अगस्त—विजय या पराजय शीर्षक से १९५६ में लिखा गया। यह लेख प्रस्तुत पुस्तक का बारहवां अध्याय है। सुबद्ध करने के लिए थोड़ी सी काटछांट करके इन लेखों को पुस्तक का रूप दे दिया गया। यह करते हुए दो और अध्याय जोड़ दिये गये। एक का शीर्षक है "गांधीवाद का अर्थ" और दूसरे का "गांधी जी के बाद गांधीवाद।

अनेक ज्ञात और अज्ञात मित्रों ने मेरी इस कृति में रुचि दिखाई। जब यह लेखमाला के रूप में निकल रही थी उस समय और पुस्तक रूप में इसका प्रकाशन हो जाने के बाद भी उन मित्रों ने अपनी दिलचस्पी का परिचय दिया। कुछ लोगों ने इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की कुछ ने प्रशंसा के साथ-साथ मैत्रीपूर्ण आलोचना की कुछ ने इसकी आदि से अन्त तक घोर आलोचना की और कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने इसका मजाक उड़ाया। हम उन सभी विद्वानों के प्रति आभार प्रकट करते हैं जिन्होंने अपनी मूल्यवान सम्मति मेरे पास भेजने की कृपा की क्योंकि इन सम्मतियों से महात्मा गांधी और उनके कार्य के अध्ययन के प्रति अपने दृष्टि-बिन्दु पर पुनर्विचार करने में मुझे मदद मिली है।

लेकिन यह स्पष्ट कर दूं कि इस पुस्तक में किये गये मूल्यांकन को

संशोधित करने का कोई आधार मुझे नहीं मिला। मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि गांधी जी और उनके कार्य का अन्य किसी प्रकार से मूल्यांकन करना संभव नहीं है या अन्य बंधुओं ने अन्य मूल्यांकन नहीं प्रस्तुत किये हैं। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन और समाजवाद के इतिहास का एक तुच्छ विद्यार्थी होने के नाते मेरी बराबर यह कोशिश रहेगी कि गांधीवाद पर ऐसे सभी दृष्टि-बिन्दुओं को समझने की कोशिश करूं। साथ ही मैं आशा करता हूं कि वे मित्र भी मेरे दृष्टि-बिन्दु को समझने की कोशिश करेंगे। अध्ययन और विचार-विनिमय की इस प्रक्रिया के द्वारा ही सही मूल्यांकन हो सकता है।

बेशक महात्मा गांधी और उनकी शिक्षाओं का मेरा मूल्यांकन मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्व-दर्शन पर आधारित है। लेकिन यहां यह भी बता दूं कि गांधीवाद मेरे लिए कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे मैंने मार्क्सवादी बनने के बाद और केवल उसकी आलोचना करने के ख्याल से पढ़ा हो। अन्य अनेक भारतीय मार्क्सवादियों की भांति मैं भी मार्क्सवादी बनने के पहले लम्बे अर्से तक गांधी जी का शिष्य रह चुका था। दरअसल मेरे लिए लेनिनवाद को स्वीकार करना एक लम्बी प्रक्रिया की परिणति थी जिसके दौरान मैं गांधीवाद तक पहुंचा और फिर गांधीवाद को छोड़ आगे बढ़ गया।

महात्मा गांधी के व्यक्तित्व और १९२०-२१ में उनके द्वारा चलाये गये राष्ट्रव्यापी आन्दोलन ने ही सर्वप्रथम मेरे अन्दर राजनीतिक चेतना जगायी थी। उन दिनों मैं ग्यारह-बारह साल का बच्चा था। गांधी जी के तूफानी असहयोग आंदोलन ने मुझे आकृष्ट किया। उन दिनों अखबार तक न कोई दैनिक पत्र न था अतः गांधी जी के कार्यकलाप के बारे में जो थोड़ी-बहुत खबरें मुझे मिलीं उन्होंने मेरे मानस-चक्षु के सामने एक नई दुनिया खड़ी कर दी।

मैं गांधी जी और उनकी शिक्षाओं की घुट्टी लेकर ही बड़ा हुआ। स्वराजियों और यथास्थितिवादियों की पारस्परिक बहस के दौरान मेरी पूरी हमदर्दी यथास्थितिवादियों के साथ थी। मैं गांधीवादी रचनात्मक

कार्यकर्ताओं की कुछ साधनाएं भी आरम्भ कर दीं जिनके कुछ अवशेष आज भी मुझ में देखे जा सकते हैं।

जब गांधीवादियों के मध्य वाम अथवा उग्रपंथी (जवाहरलाल नेहरू जिस प्रवृत्ति के प्रतिनिधि थे) प्रवृत्ति का उदय हुआ तो मैं नेहरू पथ का उत्साही अनुयायी बन गया। इसके बाद गांधी जी के अनुयायियों के अन्दर भी यह वामपंथी धारा और अधिक वामपंथी हो गयी जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना हुई (उस पार्टी के संस्थापक महा-सचिव और सर्वप्रमुख नेता श्री जयप्रकाश नारायण अब उन लोगों के सर्वप्रमुख नेता हैं जिन्हें हम गांधी जी के बाद के गांधीवादी कह सकते हैं)। मैं भी कांग्रेस समाजवादी पार्टी में सम्मिलित हो गया। गांधी जी के अनुयायियों की इस वामपंथी धारा से ही आगे निकल कर मेरा गांधीवादी से मार्क्सवादी-लेनिनवादी के रूप में गुणात्मक परिवर्तन हुआ। यहां इतना और कह दूं कि श्री जयप्रकाश जैसे अन्य कतिपय सहकर्मियों ने इस धारा से निकल कर मेरी तरह मार्क्सवाद लेनिनवाद की धारा में छलांग नहीं लगायी। इसीलिए वे मार्क्सवाद के तट तक आकर फिर गांधीवाद की धारा में जा मिले।

अतः श्री तेन्दुलकर लिखित गांधी जी की जीवनी मेरे लिए इतिहास की पुस्तक मात्र नहीं है। यह (प्रथम खंड को छोड़ कर जिसमें अधिकतर असहयोग आंदोलन के पूर्व का काल लिया गया है) भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की कहानी का एक अंग है—उस कहानी का अंग है जिसमें मैंने कुछ भाग लिया है। इसके प्रथम दशक में मैं उतनी सक्रियता से सम्मिलित नहीं था क्योंकि मात्र दर्शक भी न था। पर बाद के बीस वर्षों में मुझे काफी सक्रियता से उसमें शरीक होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

यह भी बता दूं कि गांधीवादी विचारधारा के अनेक प्रमुख नेताओं के वैयक्तिक सम्पर्क में आने का भी मुझे सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। १९३२-३३ में जब मैं वेल्लूर सेंट्रल जेल में था तो श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी डॉ. पट्टाभि सीतारमैय्या देशभक्त कोंडा वेंकटप्पैय्या और बुलुसु साम्बमूर्ति जैसे मद्रास और आंध्र के प्रसिद्ध गांधीवादियों के साथ ही चौबीसों घंटे उठना-बैठना होता था। हमारे बैरक-वार्ड के सामने शाम को डॉ.

पट्टाभि का प्रसिद्ध "दरबार" लगा करता था। शिष्यों का एक दल वहां इकट्ठा होता और डॉ पट्टाभि ज्ञान का अपना अगाध भंडार बिखेरते हुए भाषण देते। दक्षिण भारत के सर्वप्रमुख गांधीवादी नेताओं के साथ बिताये वे डेढ़ वर्ष मुझे अब भी याद आते हैं।

उपरोक्त पृष्ठभूमि में मैंने यह समीक्षा आरम्भ की। आरम्भ करते समय स्वाभावतया दो प्रश्न मेरे सामने आये। पहला प्रश्न यह था कि वह क्या चीज है जिसके कारण मेरे जैसे लाखों नौजवान १९२०--२१ में और उसके बाद गांधीवादी सेना में भर्ती हुए थे। दूसरा प्रश्न यह है कि वह क्या कारण है कि मेरे जैसे बहुत से नौजवान धीरे-धीरे गांधी जी से असन्तुष्ट होकर मार्क्सवाद-लेनिनवाद की सेना में जा भर्ती हुए। पहले कुछ दर्जन लोग फिर कुछ सौ लोग और फिर हजारों की संख्या इस तरह गांधीवादी शिविर को छोड़कर मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिविर में चली आयी।

इन प्रश्नों का उत्तर गांधी जी की जीवन-कथा और देश के राजनीतिक जीवन में उनकी भूमिका की रूपरेखा प्रस्तुत करके ही दिया जा सकता है। इसके लिए गांधी जी का युग-व्यापी व्यक्ति के रूप में विश्लेषण करना होगा। उन विशेष शक्तियों को देखना होगा जिन्होंने उनके व्यक्तित्व और राजनीतिक दृष्टिकोणों को ढाला। उस परिवेश की विवेचना करनी होगी जिसमें राजनीतिक जीवन में प्रवेश करते समय गांधी जी ने अपने को पाया था। उस लक्ष्य पर गौर करना होगा जिसे लेकर उन्होंने इस परिवेश को बदलने की कोशिश की। परिवेश को बदलने के लिए जो कार्यविधि उन्होंने अपनायी उस पर दृष्टिपात करना होगा। साथ ही जनता के विभिन्न वर्गों और अंगों पर उनके कार्यों के प्रभाव के बारे में विचार करना होगा। और यह सब हम बहुत ध्यान के साथ करना होगा और इनके पारस्परिक अंतःसम्बंध को ढूंढ निकालना होगा। अध्याय २ से १२ तक मैंने यही करने की कोशिश की है। इस अनुशीलन का कुल परिणाम गांधीवाद का अर्थ शीर्षक अध्याय में पेश किया गया है।

स्वाभावतया अधिकतर समीक्षकों ने इस अध्याय को ही अपनी

आलोचना का मुख्य विषय बनाया है। उन्होंने गांधी जी के मेरे मूल्यांकन में अंतर्विरोध ढूंढ़ निकालने की कोशिश की है। एक ओर तो मैंने लिखा है कि गांधी जी ने देश के अभी तक सोये पड़े देहाती गरीबों को जगाने में बहुत बड़ी भूमिका अदा की और दूसरी ओर मैंने लिखा है कि वह पूंजीपति वर्ग के नेता थे। क्या यह अंतर्विरोध नहीं है?

अत्यंत विनम्रता के साथ मैं उन्हें यह बताना चाहता हूं कि यदि "पूंजीवादी" शब्द का अर्थ आप कोई गाली समझते हैं, तो जरूर यह अंतर्विरोध लग सकता है। पर यदि किसी के बारे में हम यह कहें कि समस्याओं के प्रति उसके दृष्टिकोण का अर्थसार पूंजीवादी-जनवादी है न कि सर्वहारा तो इसका अर्थ यह नहीं है कि हर सवाल पर उसका दृष्टिकोण प्रतिगामी है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संस्थापकों और नेताओं की कृतियों पर एक दृष्टि डाल लेना ही यह समझने के लिए काफी होगा कि पूंजीवादी वर्ग ने हर देश के अन्दर तथा उसके राष्ट्रीय जनवादी आन्दोलन के इतिहास के खास तौर में आम जनता को सामन्ती और उपनिवेशवादी दोनों प्रकार के प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध जगाने और संगठित करने वाली शक्ति का काम किया है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद के अनुयायियों ने पूंजीवादी वर्ग की इस भूमिका की हमेशा सराहना की है लेकिन साथ ही वे यह बात बताना भी नहीं भूले हैं कि पूंजीवादी वर्ग की यह भूमिका गम्भीर परिसीमाओं में आबद्ध रही है। अपनी ऐतिहासिक प्रतिष्ठित क्रान्ति यानी १७८९–९३ की फ्रांसीसी क्रान्ति में फ्रांस के पूंजीवादी वर्ग ने वहां के किसानों को जगाते और उनका नेतृत्व करते हुए सामन्तवाद पर तीखी चोट की। लेकिन इसी पूंजीवादी वर्ग ने क्रान्ति के एक खास मंजिल तक पहुंच जाने पर, उसी क्रान्ति के अन्दर, उन्हीं किसानों को जिन्हें उसने जगाया और आगे बढ़ाया था धोखा दिया। बुनियादी तौर पर यही कहानी बाद की सभी पूंजीवादी-जनवादी क्रान्तियों में दुहरायी गयी। मार्क्स-एंगेल्स की सुप्रसिद्ध कृतियों जैसे लूई बोनापार्ट की अठारहवी ब्रूमेर फ्रांस में वर्ग-संघर्ष (१८४८-५) जर्मन क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति और फ्रांस में गृहयुद्ध में इसका सुन्दर वर्णन मिलता है।

औपनिवेशिक, अर्द्ध-औपनिवेशिक और परतंत्र देशों के राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों पर लिखते हुए लेनिन ने भी पूंजीवादी वर्ग की इस दुहरी भूमिका पर जोर दिया है। अतः पूंजीवादी वर्ग की भूमिका की सही समझ न रखने वाले उन लोगों को ही जो यह समझ लेते हैं कि किसी को पूंजीवादी वर्ग का वैचारिक प्रतिनिधि कहना उसे गाली देना है, गांधी जी के मेरे द्वारा किये गये मूल्यांकन में अंतर्विरोध दिखाई दे सकता है।

यह भी बता दूं कि जब मैंने गांधी जी को पूंजीवादी वर्ग का वैचारिक प्रतिनिधि कहा तो मेरे दिमाग में यह बात कतई न थी कि गांधी जी पूंजीवादी वर्ग हितों की हिफाजत करने की नीयत लेकर कार्य कर रहे थे। हर मानव का यह दुर्भाग्य है कि उसके कार्य के सम्बंध में इतिहास का निर्णय उस व्यक्ति के खुद अपने सोचने या करने से भिन्न होता है। महात्मा गांधी ईमानदारी से विश्वास करते रहे होंगे कि वह पूरे राष्ट्र के हितों की हिफाजत कर रहे हैं, किसी खास वर्ग या सम्प्रदाय का नहीं। पर असल मुद्दा यह है कि उनके व्यावहारिक कार्य-कलाप के वास्तविक परिणाम क्या हुए ? यही बात अन्य व्यक्तियों पर भी लागू होती है। पुरानी कहावत है—"नरक का रास्ता नेक इरादों से पटा पड़ा है।

बेशक किसी व्यक्ति का मूल्यांकन उसके कार्यों के परिणामों से ही करना एकांगी है। उसके इरादों का भी महत्व है। दरअसल उसका और उसके कार्य का मूल्यांकन करने का सही तरीका यह है कि उसके इरादे का पता लगाया जाय उस कार्यविधि का अध्ययन किया जाय जिसके जरिए उसने अपने इरादों को पूरा करने की कोशिश की और उन परिणामों को देखा जाय जो सामने आये। मेरा दावा है कि मैंने यही करने की कोशिश की है।

"गांधीवाद का अर्थ" शीर्षक अध्याय में मैंने जो मूल्यांकन प्रस्तुत किया है वह इन शब्दों के साथ आरम्भ होता है— गांधी जी ने अपने सामने कुछ खास आदर्श रखे जिनका उन्होंने अपने जीवन के अन्त तक अनुसरण किया । ये आदर्श उनके जीवन और उनकी शिक्षाओं के अविभाज्य अंग थे। यही बात विशद करके आगे फिर दुहरायी गयी

है — साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष के दिनों में गांधी जी ने जो मूल्य मान्यताएं सिखायी थीं वे सत्ता प्राप्त करने वाले राजनीतिज्ञों के लिए राह का रोड़ा बन गयी हैं। पर गांधी जी इन मूल्य-मान्यताओं के प्रति निष्ठावान बने रहे। उनके भूतपूर्व सहकर्मियों और सहकारियों में सहसा जो परिवर्तन आया गांधी जी उससे समझौता न कर सके। एक ओर तो कतिपय मूल्य-मान्यताओं और आदर्शों के प्रति मृत्यु-पर्यन्त गांधी जी की यह निष्ठा बनी रही दूसरी ओर उनके सहकर्मियों में इन आदर्शों और नैतिक मूल्य-मान्यताओं के प्रति निष्ठा का अभाव था। मैं इसे ही उनके जीवन के अन्तिम दिनों में उनके और उनके सहकर्मियों के बीच लगातार बढ़ती गयी खाई का कारण मानता हूं। अतः गांधी जी पर खुदगर्जी या बदनीयती का आरोप लगाने का प्रश्न ही नहीं उठता। बात उल्टी ही है। मैंने गांधी जी को उनकी आदर्शवादिता का पूर्ण श्रेय दिया है।

लेकिन बुद्ध ईसा या मुहम्मद जैसे पैगम्बरों के साथ जो बात थी वही गांधी जी के आदर्श और उनकी नैतिक मूल्य-मान्यताओं के साथ भी थी। ये कोरे अपकर्षण मात्र न थीं केवल हवाई न थीं बल्कि इतिहास के उस महान नाटक की अंग थीं जिसमें करोड़ों मानव हिस्सा लेते थे।

पैगम्बरों की बात को छोड़ दें। हमारे और आप जैसे साधारण जनों के पास भी बहुत सारे आदर्श हो सकते हैं जो अच्छे या बुरे आदर्श होंगे। वे आदर्श अपने मानने वाले के पास ही धरे रह जायें अगर वे अन्य व्यक्तियों की अस्पष्ट रूप से अनुभूत आकांक्षाओं और आवश्यकताओं के साथ मेल न खायें। जितने ही अधिक लोगों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के साथ हमारे आदर्श मेल खायेंगे उतना ही अधिक हमारी शिक्षा सफलीभूत होगी और शिक्षा देने वाला व्यक्ति लोकप्रिय होगा। बुद्ध ईसा और मुहम्मद इसीलिए बहुत बड़े पैगम्बर हैं कि उनके द्वारा उद्भावित आदर्श और मूल्य-मान्यताएं करोड़ों लोगों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से केवल उनके जीवन काल में ही नहीं बल्कि सदियों बाद तक मेल खाती रहीं।

गांधी जी भी इसीलिए महान थे कि जिन आदर्शों और नैतिक

मूल्य-मान्यताओं को वे मृत्यु-पर्यन्त मानते रहे। वे करोड़ों भारतीयों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से मेल खाती थीं। उनकी शिक्षा पूरे राष्ट्र के लिए विद्रोह का आह्वान बनी। यह शिक्षा खास तौर पर देहातों की गरीब जनता — गांधी जी के शब्दों में "दरिद्र नारायण" — के लिए विद्रोह का आह्वान थी। प्रेम, सत्य और न्याय आदि की उनकी धारणा युग के प्रसंग में आम देहाती जनता के लिए उन सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक बंधनों से अपने को मुक्त कर लेने की उत्प्रेरणा थी जिन्होंने उसे साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के चक्के से बांध रखा था। अतः देहाती गरीब जनता ने उन्हें नया मसीहा माना। पर बात ग्रामीण गरीबों तक ही सीमित नहीं है। देश की जनता के अन्य अंग भी हैं जिन्होंने गांधी जी को एक ऐसा महान व्यक्ति माना जिसके आदर्श और जिसकी नैतिक मूल्य-मान्यताएं उनकी अपनी आकांक्षाओं और तात्कालिक हितों से मेल खाती थीं। भारतीय मजदूर-वर्ग ने भी जिसका अपना स्वतंत्र राजनीतिक आन्दोलन अभी विकसित नहीं हुआ था गांधी जी को अपने हितों का हामी पाया। मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों और नौजवानों ने भी जिनके दिलों में महान एवं उदात्त आदर्शों के लिए जूझने की आग होती है गांधी जी को ऐसा उत्साह प्रदान करने वाला नेता पाया जिसने उन्हें उच्च ध्येय के लिए जान की बाजी लगाना सिखाया। ऊपरी वर्गों वाले पूंजीपतियों और भूसम्पत्तिधारी रईसों को भी गांधी जी में एक ऐसा व्यक्ति दिखाई दिया जो उच्च ध्येय के लिए निःस्वार्थ काम करने वाला देशभक्त था और साथ ही जो जनता की भीड़ को अहिंसा की कठोर सीमा-रेखा में बांधे रखता था।

अतः गांधी जी जनता के विभिन्न अंगों के जिनकी आकांक्षाओं और आवश्यकताओं में स्वभावतः ही बड़ी विभिन्नता थी नेता बन गये। फिर भी वह, कम-से-कम आरम्भ में इन सबको अपने नेतृत्व में एकजुट करने में सफल हुए। क्योंकि उनकी शिक्षाएं सभी को किसी न किसी अंश में सन्तोष प्रदान करती थीं। पर आंदोलन के आगे बढ़ने के साथ हितों और आकांक्षाओं के टकराव खुलकर सामने आ गये। इसीलिए गांधी जी के नेतृत्व में चलने वाले संगठन में द्वन्द्व प्रकट हुए।

गांधी जी के नेतृत्व के परिणामस्वरूप आंदोलन में उत्पन्न होने वाले इन प्रवृत्तियों को कुल मिलाकर देखे हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि गांधी जी के आदर्शवाद में खूबियां और खामियां दोनों थीं। खूबियां संक्षेप में ये थीं कि गांधी जी ने आम जनता को साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के विरुद्ध जगाया और संगठित किया। खामियां एक वाक्य में यह थी कि गांधी जी ने उस तथाकथित अहिंसा के कठोर पालन पर जोर दिया जिसने कार्यतः साम्राज्यवाद सामन्तवाद और पूंजीवाद के तिहरे जुए को तोड़ फेंकने की इच्छा रखने वाले मजदूर और किसान जन समुदाय पर अंकुश लगा दिया। प्रसंगवश कह दें कि यह ठीक वही बात थी जो पूंजीवादी वर्ग के हित में थी। वह चाहते थे कि देश की जनता साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के विरुद्ध उभरे और संगठित हो पर साथ ही वह यह भी चाहते थे कि जनता के कार्यों और संघर्षों के ऊपर सख्ती के साथ अंकुश रखा जाय। जब मैं कहता हूं कि जीवन एवं इतिहास के प्रति गांधी जी का दृष्टिबिन्दु पूंजीवादी-जनवादी दृष्टिबिन्दु है तो मेरा तात्पर्य पूंजीवादी वर्ग के हितों के तकाजे और गांधी जी के नेतृत्व के परिणामों के इस मेल से ही है।

आलोचकों ने एक बात और कही है। उनका कहना है कि शुरू के अध्यायों में मैंने गांधी जी और उनके आंदोलन की अधिक आलोचना की है बाद के अध्यायों में कम। इस "तथ्य की "व्याख्या वे यों करते हैं प्रथम अध्याय उस समय लिखे गये थे जब सोवियत विद्वान गांधी जी की निन्दा किया करते थे और बाद के अध्याय उस समय लिखे गये जब सोवियत विद्वानों ने अपनी राय बदल दी। दूर की कौड़ी लाये हैं ये दोस्त। बता दूं कि मेरे दृष्टिबिन्दु में कहीं कोई अन्तर नहीं है। उदाहरण के लिए, "प्रारंभिक वर्ष" शीर्षक अध्याय में दक्षिण अफ्रीकी आंदोलन के मूल्यांकन को ले लीजिए। वहां भी मैंने वही बात कही है जो बाद के सभी आंदोलनों के बारे में कही है। मैंने इस तथ्य का उल्लेख किया है कि गांधी जी जिस आंदोलन के प्रणेता और नेता थे वह सर्ववर्गी आंदोलन था किन्तु उसकी वास्तविक शक्ति का स्रोत दक्षिण अफ्रीका प्रवासी गरीब मेहनतकश भारतीयों की लड़ाकू भावना

और कुर्बानी थी। मैंने इस बात का उल्लेख किया है कि साधारण जनता की संघर्षशीलता और आत्मत्याग ने गांधी जी के मस्तिष्क पर अमिट छाप डाली लेकिन साथ ही मैंने संघर्ष का नेतृत्व और संगठन करने के गांधी जी के ढंग की आलोचना की है।

पूरी पुस्तक में मेरा यही दृष्टि-बिन्दु रहा है। आम जनता को जगाने और गोलबंद करने में गांधी जी की भूमिका की मैंने सराहना की है साथ ही उनके सांगठनिक नेतृत्व और इस नेतृत्व का निर्देशन करने वाले सामाजिक-आर्थिक दृष्टिकोण की मैंने आलोचना की है। मेरा यही दृष्टि-बिन्दु आपको "गांधीवाद का अर्थ" नामक अध्याय में स्पष्ट रूप में निरूपित मिलेगा।

अतः इन आलोचकों ने जिन "तथ्य" का हवाला दिया है वह वास्तव में उनके अपने दिमाग की ही उपज है। ऐसी हालत में उनकी व्याख्या का खंडन करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

कुछ सज्जनों ने एक बे-सिर-पैर की बात और उड़ायी है। उनका कहना है कि मूल लेखमाला को पुस्तक रूप में प्रस्तुत करते हुए मैंने उसमें कई मौलिक संशोधन किये हैं। इन सज्जनों के कथनानुसार ऐसा करने का कारण यह था कि सोवियत विद्वानों ने अपना दृष्टि-बिन्दु बदल डाला। उन्हें बता दूं कि पुस्तक में मैंने कोई "मौलिक संशोधन" नहीं किया है। जैसा कि इस भूमिका के आरम्भ में ही बता चुका हूं जो परिवर्तन किये गये वे वही थे जो बिखरी हुई लेखमाला को पुस्तक रूप में प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक थे। गांधी जी और गांधीवाद सम्बन्धी मेरे दृष्टिबिन्दु में रत्ती भर भी परिवर्तन नहीं किया गया है।

अपने मित्रों को मैं फिर धन्यवाद देना चाहता हूं। उनकी आलोचना मेरे लिए मूल्यवान रही है क्योंकि उनसे ही इस पुस्तक में किये गये मूल्यांकन के विभिन्न पहलुओं पर पुनर्विचार करना संभव हुआ। मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं।

त्रिवेंद्रम
२ जनवरी १९५९

ई एम एस नम्बूदीपाद

भूमिका

एक समय था जब डॉ. जे सी कुमारप्पा और पं सुन्दरलाल जैसे सुविख्यात गांधीवादियों को भी इस बात के लिए कम्युनिस्ट सहयात्री कहकर पुकारा जाता था कि वे सोवियत संघ और चीन के बारे में सच्ची-सच्ची बातें सबके सामने पेश करते थे और बताते थे कि मानव सम्बन्धों को बेहतर बनाने तथा जनता का जीवनमान ऊपर उठाने में इन देशों ने भारी तरक्की की है। सच्चे गांधीवादी होने के नाते वे सज्जन उपरोक्त देशों में हो रही घटनाओं के बारे में यह कहने को प्रेरित हुए कि यही असली गांधीवाद है।

यह वही समय था जब मद्रास के तत्कालीन मुख्य-मंत्री श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने कम्युनिस्टों को "नम्बर एक शत्रु बताते हुए उनके विरुद्ध जंग का ऐलान किया था। उन्हीं दिनों तत्कालीन रेलवे मंत्री ने सोवियत पुस्तकों और पत्रिकाओं का रेलवे बुकस्टॉलों पर बेचा जाना यह कहकर रोक दिया था कि यह "प्रचार-साहित्य है जब कि दूसरी ओर तथाकथित स्वतंत्र-जगत् से आने वाले निकृष्टतम अश्लील और कामोत्तेजक साहित्य के वितरण पर कोई रोक न थी। और उन्हीं दिनों कम्युनिस्ट संसद सदस्य श्री सुन्दरैया ने जब सोवियत संघ के साथ व्यापारिक समझौता करने का प्रस्ताव पेश किया तो तत्कालीन वाणिज्य मंत्री ने उठकर ऐलान किया कि ऐसा नहीं हो सकता।

तब से स्थिति बहुत बदली है और दोनों ही ओर बदली है। भारत-सोवियत व्यापार-सम्बंध के कम्युनिस्ट प्रस्ताव के वाणिज्य-मंत्री

का शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व और अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं को हल करने में सहयोग एक चीज है और हमारे अपने देश के अन्दर भिन्न-भिन्न वर्गों का द्वन्द्व जिसकी अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न विचारधाराओं में होती है दूसरी चीज है। पहली से दूसरी का समाधान नहीं हो जाता। मिसाल के लिए, भारतीय जनता ने सोवियत नेताओं के भव्य स्वागत के समय जिस शानदार एकता का परिचय दिया उससे आन्तरिक नीति के निम्नांकित प्रश्न हल नहीं हो गये

१—क्या हमारे देश में भूमि-समस्या भूदान आंदोलन से हल हो सकती है ? या उसके लिए ऐसे संगठित किसान आंदोलन को विकसित करना आवश्यक है जिसमें जमींदारों और अन्य प्रतिगामी वर्गों की शक्ति को चकनाचूर कर देने की क्षमता हो ?

२—क्या तेज गति से औद्योगीकरण करने का कार्यक्रम (जिसे अब पूरा देश मान चुका है) विदेशी इजारेदार पूंजी के साथ समझौते के आधार पर सम्पन्न हो सकता है या इसे सम्पन्न करने के लिए उनके विरुद्ध डट कर संघर्ष करना होगा ?

३—क्या तेज गति से औद्योगीकरण करने का उद्देश्य स्वयं एक सही उद्देश्य है ? या इस उद्देश्य का सर्वोदय आदर्श के साथ विरोध है, जिसे शासक पार्टी के नेता मान चुके हैं ?

इन सवालों पर केवल गांधीवादियों और मार्क्सवाद-लेनिनवाद के अनुयायियों में ही मतभेद नहीं है, बल्कि अपने को गांधीवादी कहनेवाली विभिन्न प्रवृत्तियों में भी मतभेद है।

ऐसी दशा में यह आवश्यक हो जाता है कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद के अनुयायी गांधीवादी दर्शन और व्यवहार का सही-सही मूल्यांकन करने का प्रयास करें। यह कार्य श्री डी जी तेन्दुलकर द्वारा आठ जिल्दों में लिखित महात्मा गांधी की जीवनी के प्रकाशन से सुगम हो गया है।

श्री तेन्दुलकर अपनी पुस्तक का प्रथम खंड "प्लासी से अमृतसर" तक के हमारे इतिहास के २५ पन्नों के एक विवरण के साथ आरम्भ करते हैं। यह उचित ही है। इसमें उन्होंने बड़ी-बड़ी घटनाओं और व्यक्तियों को पेश किया है। १८५७ का विप्लव और "लड़ते हुए प्राणों का उत्सर्ग करने वाली रानी लक्ष्मीबाई; ब्रिटिश शासन में पड़ने वाले भीषण अकाल महान् राजा राममोहन राय जिन्होंने स्वतंत्रता समता और बंधुत्व का झंडा बुलन्द करने वाले फ्रांसीसी राष्ट्र को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए एक फ्रांसीसी जहाज पर चढ़ने का आग्रह किया था फीरोज शाह मेहता दादा भाई नौरोजी रानाडे और तिलक जैसे प्रकांड विद्वान्-राजनीतिज्ञ १९ ४ में अन्तरराष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेस का आम्स्टर्डम अधिवेशन जिसमें भारतीय प्रतिनिधि दादाभाई नौरोजी के मंच पर उपस्थित होते ही सभी प्रतिनिधि खड़े हो गये और टोपियां उतार कर भारतीय जनता को सम्मान प्रदान किया भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मंच से स्वराज्य की मांग लाल-बाल-पाल के नेतृत्व में नये क्रांतिकारी राजनीतिक सम्प्रदाय का उदय तिलक पर ऐतिहासिक मुकदमा और उन्हें बर्बरता पूर्ण दंड दिये जाने पर बम्बई के मजदूरों की प्रथम राजनीतिक हड़ताल जिसको लेनिन ने भारी महत्व की घटना बताया था प्रथम विश्व युद्ध के बाद साम्राज्य-विरोधी आन्दोलन का नया उभार, आदि घटनाक्रम इस अध्याय में वर्णित किये गये हैं।

इसी युग में जब कि भारत की जनता साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष

में और इस संघर्ष के जरिए धीरे-धीरे समवेत हो रही थी श्री करमचन्द गांधी के घर उनके सबसे छोटे पुत्र मोहनदास करमचन्द गांधी पैदा हुए। मोहनदास के पिता और उनके बाबा श्री उत्तमचन्द काठियावाड़ की कई रियासतों में दीवान रह चुके थे।

> इन नौकरियों में उन्होंने स्वामिभक्ति, योग्यता और चरित्र-बल का परिचय दिया था जो रियासती कर्मचारियों में विरले ही पाया जाता है। पोरबन्दर की राजनीति में गांधी परिवार ने महत्वपूर्ण योगदान किया था। (तेन्दुलकर की पुस्तक पृष्ठ २७-२८)

किशोर मोहनदास पर जमाने की हवा ने असर डाला। मांसाहार के पक्ष में जिस तर्क ने मोहनदास को सबसे अधिक प्रभावित किया वह यह था कि अंग्रेज मांसाहार करने के कारण ही इतने बली होते हैं। मोहनदास ने सोचा अगर हमारा देश मांसाहार आरम्भ कर दे, तो वह अंग्रेजों को हरा सकता है।

जीवनी में हम यह भी पढ़ते हैं कि बचपन से ही मोहनदास अपनी मां के साथ बहस किया करते थे कि अस्पृश्यता धर्मविहित नहीं है। उन्हें अध्ययन के लिए विदेश जाने पर बिरादरी से बहिष्कृत तक होना पड़ा। बिरादरी की एक आम सभा ने फैसला किया यह लड़का आज से बिरादरी से खारिज किया जाता है। उसे मदद करने वाला या उसे विदा करने के लिए जहाज-घाट पर जाने वाला सवा रुपया जुर्माने का भागी होगा।

लन्दन में नये बैरिस्टर मोहनदास गांधी ने भांति-भांति के प्रगतिशील आन्दोलनों में दिलचस्पी लेना शुरू किया। वह नास्तिक न थे पर ब्रिटेन में उन दिनों नास्तिकवाद के सबसे बड़े प्रचारक चार्ल्स ब्राडला के जरिए उन्होंने नास्तिकवाद में दिलचस्पी ली। वह ब्राडला की शव-यात्रा में शामिल हुए। उनकी राय में ब्राडला जैसे नास्तिकों के लिए सत्य का वही स्थान है जो धर्मों के लिए ईश्वर का।

१८८९ में लन्दन के गोदी-मजदूरों की एक हड़ताल में गांधी जी

एक भारतीय मित्र के साथ कार्डिनल मैनिंग के यहां गये और हड़तालियों की मदद करने के लिए उन्हें धन्यवाद दिया।

पर जैसा कि एक भावी महात्मा के लिए सर्वथा स्वभाव-सम्मत था सबसे अधिक दिलचस्पी लंदन में उन्हें शाकाहार आंदोलन में हुई।

> वह लंदन के शाकाहारी संघ के सदस्य बन गये और जल्द ही उसकी कार्यकारिणी में ले लिये गये। अत्यन्त उत्साह पूर्वक उन्होंने अपने मुहल्ले बेजवाटर में एक शाकाहारी क्लब की स्थापना की (पृष्ठ १५-१६)

ध्यान रखना चाहिए कि यह सब एक ऐसे युग में और ऐसे देश में हुआ जिसके बारे में उनकी जीवनी के लेखक ने ये शब्द लिखे हैं

> नये-नये विचार इस तरह मैदान में आ रहे थे जिस तरह इंग्लैंड के इतिहास में पहले या इसके बाद, कभी नहीं आये थे। १८८० में स्वतंत्र लेबर पार्टी की स्थापना हुई। सिडनी वेब और बर्नार्ड शा के नेतृत्व में फेबियन सोसायटी समाजवाद और वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार कर रही थी। १८८० में मार्क्स की पूंजी का प्रथम भाग इंग्लैंड में निकला था और मजदूरों ने तत्काल उसे अपनी बाइबिल बना लिया था। मार्क्स के सहकर्मी एंगेल्स ने जो इंग्लैंड में रह रहे थे पुस्तक का दूसरा खंड १८८५ में जर्मन में निकाला था और अब तीसरा खंड तैयार कर रहे थे। १८८९ में बर्नार्ड शा के फेबियन निबन्ध निकले। १८७१ में प्रकाशित डार्विन की अमर रचना पर बहस छिड़ी हुई थी। रस्किन और विलियम मारिस ने कला-जगत् में नवीन क्रांति उत्पन्न की थी। (पृष्ठ १८)

इन सारे क्रान्तिकारी बौद्धिक और व्यावहारिक राजनीतिक आंदोलनों के मुकाबले में शाकाहार आंदोलन को अपनाने वाला गांधी इन लिखने वालों को एक सनकी आदमी प्रतीत हुआ होगा। पर भविष्य की घटनाओं ने सिद्ध कर दिया कि इसमें तत्कालीन जैसी कोई

चीज नहीं थी। भारत के अन्य वृद्ध पुरुष (दादाभाई नौरोजी) के प्रति उनकी श्रद्धा ब्रिटिश नास्तिकवादी एवं भारत-मित्र चार्ल्स ब्राडला के प्रति उनकी सच्ची आदरभावना और मतभेद लन्दन के गोदी-मज दूरों की हड़ताल में उनकी दिलचस्पी शाकाहार आंदोलन में उनका सहयोग — ये सभी एक ऐसे कार्य-दर्शन के अंग थे जिसने अगली अर्ध-शताब्दी तक भारतीय इतिहास में निर्णायक भूमिका अदा की।

दरअसल यह अगले कुछ वर्षों में प्रकट हुआ जब तरुण बैरिस्टर मोहनदास गांधी ने वकालत के साथ-साथ दक्षिण अफ्रीका प्रवासी भार तीयों की जीवनावस्थाओं के सम्बंध में अपने जीवन दर्शन का प्रयोग किया। श्री तेन्दुलकर अपनी पुस्तक के ११ पृष्ठों में हमें १८९३ से १९१४ तक ले आते हैं। इसी अवधि में गांधी जी ने अपना सत्याग्रह अस्त्र विकसित किया जिसका बाद में १९२१ १९१ १९३२ और १९४२ में राष्ट्रव्यापी पैमाने पर प्रयोग किया गया। बेशक बाद के आंदोलनों में गांधी जी ने अपनी कार्यविधि को और भी विकसित और पूर्ण किया। पर पहले ही प्रयोग में हम गांधीवाद के दर्शन एवं व्यवहार की मुख्य रूपरेखा के दर्शन कर सकते हैं। अतः यहां दक्षिण अफ्रीका के आंदोलन की विशेषताओं का उल्लेख कर देना उपयोगी होगा। ये विशेषताएं थी

एक दक्षिण अफ्रीका का आंदोलन सर्ववर्गीय आंदोलन था। जिस सवाल को लेकर आन्दोलन किया गया था —यानी भारतीयों को यूरोपवासियों के साथ समानता के अधिकार दिलाने का सवाल — वह सभी वर्गों और वर्णों के भारतीयों के हित से सम्बद्ध था।

और दक्षिण अफ्रीका में ही नहीं भारत में भी यही बात हुई। गांधी जी १ ९६ मे जब कुछ दिनों के लिए भारत आये थे तो उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के भारतीयो के सवाल पर देश भर में प्रचार-कार्य किया और भारत के समाचार-पत्रों और राजनीतिज्ञों से उन्हें बड़ा समर्थन प्राप्त हुआ था।

दक्षिण अफ्रीका का आंदोलन जब आगे बढ़ा तो गांधी जी को भारतीय धनिकों से वित्तीय सहायता मिलने लगी। रतनजी जमशेदजी

हमारी प्रशंसा में आपने जो शब्द कहे हैं, उनके दसवें अंश के भी यदि हम पात्र हों तो भला उन लोगों की प्रशंसा आप कैसे करेंगे जिन्होंने दक्षिणी अफ्रीका में आपके पीड़ित बंधुओं के लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर दिये ? १७–१८ साल के बालक नागप्पन नारायणस्वामी की तारीफ में भला आप क्या कहेंगे जिसने सरल विश्वास से प्रेरित होकर मातृभूमि की सम्मान-रक्षा के लिए भयानक कष्ट और अपमानों का सामना किया ? १६ साल की उस प्यारी-सी बालिका बलसीअम्मा की बात किन शब्दों में प्रशंसा करेंगे जो मरित्जबर्ग जेल से छूटने के समय ज्वर के कारण हड्डी की ठठरी मात्र रह गयी थी और उसी बीमारी के कारण एक महीने के अन्दर जिसकी जीवनलीला समाप्त हो गयी ? आपने कहा है कि मैंने इन महान् व्यक्तियों को अनुप्राणित किया था पर मैं आपके कथन से सहमत नहीं हूं। उल्टे, इन सरल हृदय साधारण जनों ने सहज विश्वास के साथ और किसी पुरस्कार की आशा किये बिना काम करने वाले इन लोगों ने मुझे प्रेरणा प्रदान कर उपयुक्त स्तर तक ऊपर उठाया और अपने महान् बलिदान महती आस्था और भगवान में अपने अडिग विश्वास के द्वारा मुझे वह कार्य करने को प्रेरित किया जो मैं कर सका। (पृष्ठ २ –२१)

तीन यद्यपि संघर्ष में सबसे वीरतापूर्ण और सबसे निर्णायक भूमिका मेहनतकश लोगों ने अदा की पर आन्दोलन कौन-सी दिशा ग्रहण करेगा इसका निर्णय उन्होंने नहीं बल्कि गांधी जी ने किया। दक्षिण अफ्रीका के संघर्ष में आदि से अन्त तक तथा गांधी जी के नेतृत्व में चलाये गये बाद के सभी संघर्षों में एक विशेषता स्पष्ट देखने को मिलती है। आम जनता वीरता और त्याग के अनूठे करिश्मे दिखाती है पर ऊपर बैठे कुछ नेता आन्दोलन को उन दिशाओं में निर्देशित करते हैं जिन्हें वे उचित समझते हैं। दरअसल दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह में हम संगठन और संघर्ष के उन सभी तरीकों की सामान्य रूपरेखा मौजूद पाते हैं जिन्हें गांधी जी ने आगे चलकर अपनाया।

इंडियन ओपीनियन पत्र का निकाला जाना जो यंग इंडिया और हरिजन का पूर्ववर्ती था १९०४ में फोनिक्स आश्रम और १९१० में तोल्स्तोय फार्म स्थापित करना जो साबरमती और वर्धा आश्रमों के पूर्ववर्ती बने आश्रमवासियों के लिए सूक्ष्म से सूक्ष्म ब्योरों में पूरा आचार नियम बनाना और आंदोलन शुरू करने के पहले आवश्यक शर्त के रूप में स्वयंस्वीकृत अनुशासन की बंदिश लगाना आंदोलन से पहले और उसके दौरान में अधिकारियों को बड़ी सावधानी के साथ लिखे पत्र भेजना जेल के भीतर से भी पत्र-व्यवहार और समझौते की बातचीत चलाना आंदोलन में भाग लेने वाले आम जन-समुदाय की जानकारी अथवा स्वीकृति के बिना ही अधिकारियों के साथ समझौता कर लेना आंदोलन के सूक्ष्म से सूक्ष्म ब्योरों के बारे में भी गांधी जी का व्यक्तिगत निर्देशन और गिरफ्तार हो जाने पर अपना स्थान ग्रहण करने के लिए अपना उत्तराधिकारी की नियुक्ति — आंदोलन की तैयारी करने चलाने और बन्द कर देने की ये विशेषताएं सर्वप्रथम दक्षिण अफ्रीका में उभर कर सामने आयी थीं।

इस सम्बन्ध में एक मार्के की चीज वह अत्यन्त प्रतिगामी सामाजिक दृष्टिकोण है जो गांधी जी के सारे कामों में शुरू से आखीर तक प्रकट हुई। इंग्लैंड प्रवास के समय शाकाहारी संघ की उनकी सदस्यता का असली महत्व यहां छुपता है। शाकाहारियों सन्दन के गोरी-मध्यवर्गी के साथ सहानुभूति और उस जमाने के क्रान्तिकारी विचारों के प्रति तिरस्कार भावना नहीं तो पूर्ण उदासीनता — इन तीनों का जिस तरह उन्होंने बड़ा सामंजस्य स्थापित किया था उसी तरह दक्षिण अफ्रीका में आम जनता के उग्र संघर्षों का अत्यन्त पुरातन पंथी विचार धारा के साथ संयोग स्थापित किया। इसमें भी बड़ी बात यह है कि ठीक जिस समय वह इन उग्र संघर्षों का नेतृत्व कर रहे थे उसी समय इन पुरातन-पंथी विचारों का आम जनता के बीच प्रचार भी कर रहे थे। इस तरह वह मार्क्स एंगेल्स और लेनिन (लेनिन तो उनके समकालीन ही थे) से सर्वथा भिन्न और विपरीत हैं। जब तरुण बैरिस्टर मोहन दास गांधी सन्दन में वेजेटेरियन (शाकाहारी) पत्र के लिए लेख लिख

रहे थे उसी समय तरुण मजदूर लेनिन मार्क्स और एंगेल्स आदि के लेखों का अपनी भाषा में अनुवाद कर रहे थे और रूस में पूंजीवाद का विकास लिख रहे थे। लेनिन ने मजदूर वर्ग के जमी जन-आंदोलन का सबसे आगे बढ़ी हुई विचारधारा के साथ संयोग स्थापित किया। गांधी जी ने जन-आंदोलन को उस जमाने की सबसे प्रतिगामी और पुरातन पंथी विचारधाराओं के साथ जोड़ा।

बानगी के लिए हम आधुनिक जगत् के बारे में उनके दृष्टिकोण को ले सकते हैं जिसे उन्होंने १९ ९ में हिन्द स्वराज या इंडियन होम रूल में निरूपित किया था। जैसा कि श्री तेन्दुलकर ने स्वयं लिखा है, हिन्द स्वराज "आधुनिक सभ्यता की तीव्रतम भर्त्सना है। इस पुस्तक म २ अध्याय हैं जिनमें स्वराज सभ्यता वकीलों डाक्टरों मशीनों, शिक्षा सविनय अवज्ञा और अन्य विषयों को लिया गया है। इस पुस्तक का सारांश गांधी जी ने एक मित्र को लिखे पत्र में स्वयं पेश किया है। पत्र में से कुछ अंश हम नीचे दे रहे हैं।

> "भारत पर अंग्रेज जाति का राज नहीं है बल्कि आधुनिक सभ्यता अपने रेल तार, टेलीफोन और उन सारे आविष्कारों के जरिए राज कर रही है जिनकी सभ्यता की उपलब्धि कह कर बड़ाई की जाती है। बम्बई, कलकत्ता और अन्य भारतीय बड़े नगर ही असली प्लेग हैं। यदि कल को अंग्रेजी शासन की जगह आज के तरीकों पर आधारित भारतीय शासन कायम हो जाये तो भी भारत की अवस्था कुछ ज्यादा अच्छी न होगी। केवल वे रुपये जब जायेंगे जो इंग्लैंड चले जाते हैं। लेकिन तब भारत योरप या अमरीका का दूसरा या पांचवां राष्ट्र मात्र बन जायेगा। चिकित्सा विज्ञान सियाह जादू का सत् है। जिसे उच्च चिकित्सकीय दक्षता कहते हैं उससे नीमहकीमी नहीं अच्छी है। अस्पताल शैतान के हाथों के वे साधन हैं जिनके जरिए वह अपने राज की बागडोर सम्भाले हुए है। वे दुनिया भर की दुराइयों दुष पतन और वास्तविक दासता को बरकरार रखते

है। यदि यौन-रोगों के और यहां तक कि तपेदिक के भी अस्पताल न हों तो देश में तपेदिक का प्रभाव और यौन बुराइयां कम हो जायेंगी। भारत का उद्धार तो इसी में है कि उसने पिछले पचास वर्षों में जो कुछ सीखा है, उसे भूल जाय। रेल तार, अस्पताल वकील डॉक्टर और ऐसी ही अन्य सारी चीजों को हटाना होगा।" (खंड 1 पृष्ठ 11)

गांधी जी ने इन विचारों का प्रचार ही नहीं किया बल्कि फोनिक्स आश्रम में या टॉल्स्टॉय फार्म पर अपने अनुयायियों को संगठित करते हुए इन पर अमल भी करने की कोशिश की। इन ग्राम अथवा फार्म के वासियों के रूप में बालक-बालिकाओं को भरती करते समय उन्हें अहिंसा ब्रह्मचर्य आस्तिकता अपरिग्रह और जिह्वानिग्रह का व्रत कराया जाता था। तरुण पीढ़ी के वैचारिक एवं बौद्धिक विकास को गांधी जी अत्यंत तिरस्कार भावना से देखते थे अतः स्वतंत्र चिन्तन के स्थान पर उन्होंने अंध आस्था स्थापित करने की चेष्टा की।

परन्तु इन सबके अन्दर कुछ चीज थी जो उनके झंडे के नीचे एकत्र होने वाले युवक-युवतियों के आदर्शवाद निःस्वार्थता एवं त्याग भावना को छू लेती थी। सामाजिक दृष्टिकोण की पुरातन-पंथी विषय वस्तु बुराइयों के विरुद्ध संघर्ष में सभी कष्ट झेलने की आदर्शपूर्ण इच्छा से ढक जाती थी। आधुनिक सभ्यता के प्रति गांधी जी की घृणा भावना ने साम्राज्यवादी शोषण के प्रति भारतीय तथा अन्य उत्पीड़ित जनगण की घृणा का रूप धारण कर लिया। ऐतिहासिक भौतिकवाद के प्रणेताओं ने अपनी प्रसिद्ध कृति कम्युनिस्ट घोषणापत्र में निम्न-पूंजीवादी समाजवाद के विषय में जो शब्द कहे थे वे एक हद तक गांधी जी के हिन्द स्वराज पर सही-सही लागू होते हैं। उन्होंने लिखा था

> यह समाजवादी सम्प्रदाय आधुनिक उत्पादन की अवस्थाओं के विरोधों का बड़ी गहराई के साथ विश्लेषण करता था। उसने अर्थशास्त्रियों की ढोंगभरी वकालत का पर्दाफाश किया। उसने मशीनों और श्रम-विभाजन के सत्यानाशी परिणामों को पूरी तरह

लोगों के हाथ में पूंजी और भूमि के संकेंद्रण को तथा अति-उत्पादन और संकटों को निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया। उसने बताया कि निम्न-पूंजीवादियों और किसानों की बर्बादी सर्वहारा की दुरवस्था उत्पादन में अराजकता धन के वितरण में भयानक विषमता राष्ट्रों के मध्य एक-दूसरे का खात्मा कर देने के लिए औद्योगिक युद्ध पुराने नैतिक बंधनों की पुराने परिवार सम्बंधों की और पुरानी उपजातियों की समाप्ति अनिवार्य है।" (कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स)

पर आधुनिक सभ्यता की गांधी जी ने जो समीक्षा प्रस्तुत की उसका सर्वोत्कृष्ट अवसर के साम्राज्यवाद-विरोध के साथ कोई लगाव न था। आश्चर्य की बात यह है कि जिस समय वह आधुनिक सभ्यता को कोस रहे थे उसी समय वह इस सभ्यता के उस समय के एक सबसे बड़े केन्द्र ब्रिटिश साम्राज्य की स्वामिभक्ति भी कर रहे थे। "भारत में सभी अंग्रेजों के नाम एक पत्र में उन्होंने स्वयं लिखा

मैंने ब्रिटिश साम्राज्य के लिए बार बार अपने प्राणों को खतरे में डाला है। एक बार बोअर युद्ध में जब मैं उस एम्बुलेंस दस्ते का नायक था जिसके काम की जनरल बुलर ने प्रशंसा की थी। दूसरी बार नैटाल के जुलू विद्रोह में वहां मैं वैसे ही एक दस्ते का नायक था। तीसरी बार गत युद्ध के आरम्भ में जब मैंने एक एम्बुलेंस दस्ता संगठित किया और इस सिलसिले में सख्त ट्रेनिंग हासिल करते हुए भयानक प्लूरिसी का शिकार बना। और चौथी बार दिल्ली में हुए युद्ध सम्मेलन के समय लार्ड चेम्सफोर्ड से किये गये अपने वादे की पूर्ति करते हुए जब मैं खेड़ा जिले में फौजी रंगरूट भर्ती करने के काम में जोरशोर से पिल पड़ा और पैदल ही कठिन कष्ट उठाता हुआ दूर-दूर तक घूमता रहा जिसके फलस्वरूप मुझे ऐसी पेचिश हुई कि जान जाते-जाते बची। यह सब मैंने यह विश्वास करते हुए किया कि मेरे इन कार्यों की बदौलत मेरा देश साम्राज्य में समानता का पद प्राप्त करेगा।

(जिल्द २, पृष्ठ १०-११)

यह सब गांधी जी ने ऐसे वक्त किया जब देश में एक नयी भावना साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह की भावना उभर रही थी। गांधी जी और उनके अहिंसा दर्शन की यह भी विशेषता थी कि एक ओर तो उन्होंने नौजवानों को साम्राज्यवादी युद्ध में तोप का चारा बनने के लिए भर्ती करके साम्राज्य की सेवा की और दूसरी ओर वह उन इने-गिने लोगों में से जिन्होंने सर कर्जन वाइली की हत्या का प्रयत्न करने वाले मदन लाल ढिंगरा की निन्दा की। अदालत में बयान देते हुए मदनलाल ने कहा था कि मैंने जो कुछ किया वह एक देशभक्त के नाते मेरा परम सिद्ध अधिकार था।

"मेरे विचार से विदेशी संगीनों द्वारा गुलाम बनाकर रखा गया राष्ट्र निरन्तर युद्धरत स्थिति में रहता है क्योंकि निहत्थी जाति के लिए सदा रणक्षेत्र में रहना असम्भव होता है। अपनी मातृभूमि का मैं एक साधारण पुत्र हूं जिसके पास न धन की ताकत है न बुद्धि की। अतः वह मां को अपना रक्त मात्र ही अर्पित कर सकता है। इसलिए मैं अपनी बलि दे रहा हूं। भारत को इस समय मरना सिखाने की जरूरत है। यह काम स्वयं मर करके ही किया जा सकता है।" (जिल्द १ पृष्ठ १२५)

ढिंगरा के बयान पर चर्चिल जैसे कट्टर साम्राज्यवादी ने भी जो उन दिनों उप-उपनिवेश सचिव के ओहदे पर थे — इस्लामिक के नाम पर इतना सुन्दर बयान अभी तक किसी ने नहीं दिया था। पर गांधी जी ने कुछ और ही मत व्यक्त किया। उन्होंने कहा "जो लोग यह सोचते हैं कि ढिंगरा के काम से अथवा ऐसे ही किसी अन्य काम से भारत को लाभ पहुंचा है वे भारी भूल करते हैं। ढिंगरा देशभक्त था पर उसकी भक्ति अन्धी थी। उसने गलत तरीके से अपने प्राण दिये उसका परिणाम हानिकर ही हो सकता है।

ऐसा ही था वह व्यक्ति जिसने प्रथम विश्व युद्ध के अंतिम दिनों में भारत के राष्ट्रीय राजनीतिक-मंच पर प्रवेश किया। गोखले आदि नेता उसका आदर करते थे पर उसे कुछ-कुछ सनकी भी समझते थे। जैसा कि श्री तेन्दुलकर ने लिखा है, गोखले और उनके सहकर्मी गांधी जी को आदर और प्यार की दृष्टि से देखते थे पर इन लोगों ने उन्हें सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसायटी का सदस्य कबूल नहीं किया। गोखले के शब्दों में लोग आपके प्रति अपनी उच्च आदर भावना नष्ट हो जाने का जोखिम उठाने को तैयार नहीं हैं। श्री तेन्दुलकर यह भी बताते हैं कि जब गांधी जी ने अपना यह निश्चय घोषित किया कि निचले वर्गों के भारतीयों की दुरवस्था का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वह तीसरे दर्जे में भारत भ्रमण करेंगे तो गोखले को यह मजाक मालूम हुआ था बल्कि वह इस निश्चय से स्तंभित रह गये थे।

पर भारत आकर बस जाने के कुछ ही वर्षों के अन्दर गांधी जी देश के उस वक्त के सबसे बड़े राष्ट्रीय राजनीतिक आंदोलन के एकछत्र नेता बन गये। सम्भवतः बहुत थोड़े ही लोग ऐसे थे जो उनके सामाजिक और दार्शनिक दृष्टिकोण से पूर्णतया सहमत थे। राजनीतिक आंदोलन के उनके अधिकतर बुजुर्ग अथवा समकक्ष लोग वैयक्तिक जीवन और राजनीति के सम्बन्ध में उनसे एकदम भिन्न विचार रखते थे। पर राष्ट्रीय राजनीति के रंगमंच पर गांधी जी के आते ही सभी उनके व्यक्तित्व से मन्त्रमुग्ध हो गये। वे गांधी जी के राजनीतिक और राज-

भौतिक ही नहीं वैयक्तिक प्रभाव में आ गये और उन्होंने उनकी मंत्रणा और नेतृत्व को शिरोधार्य कर लिया। उनसे कहीं अधिक बौद्धिक योग्यता और प्रतिभा रखने वाले लोगों ने भी एक प्रकार से उनका पथ निर्देशन स्वीकार कर लिया। वे गांधी जी के निर्णयों में पूर्ण आस्था रखने लगे।

बाहर से देखने पर यह बड़ी ही आश्चर्यजनक बात लगती है। लेकिन सम्भवतः यह उतनी आश्चर्यजनक नहीं है जितनी लगती है। क्योंकि गांधी जी के सामाजिक दृष्टिकोण में जो कुछ भी असाधारण तथा धर्म और आध्यात्मिकता का रंग लिए हुए था राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उनके द्वारा अपनाये गये कौशल में जो कुछ भी न्यारा था उस सबमें एक समान विशेषता थी। विशेषता यह थी कि यह सब एक ऐसे वर्ग की आवश्यकताओं की पूर्णतया पूर्ति करता था जो भारतीय समाज में निरन्तर उदित हो रहा था और देश के राष्ट्रीय राजनीतिक जीवन पर अपना अधिकाधिक प्रभाव डाल रहा था।

यहां यह याद करना उपयोगी होगा कि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम अर्धांश में ही भारतीय समाज में एक नये वर्ग के उदय के आसार प्रकट हुए थे। प्रगतिशील समाज सुधारों का एक आंदोलन उठा था जिसमें विवाह, नारी-अधिकार, उत्तराधिकार आदि में सुधार की मांग की गयी थी। एक नवीन संस्कृति विकसित करने का आंदोलन भी उठा था। इस आंदोलन का नेतृत्व राजा राममोहन राय तथा अन्य प्रान्तों में उनके जैसे ही अन्य लोगों ने किया था। इस आंदोलन का उठना प्रकट करता था कि अंग्रेजी राज्य से पहले के जमाने का मध्यम वर्ग धीरे-धीरे आधुनिक पूंजीपति वर्ग के स्वाभावगत लक्षण अपनाता जा रहा था। नये शासकों अर्थात् अंग्रेजों द्वारा पोषित यह वर्ग ब्रिटिश राज का ऐसा तरफ़दार था कि यह भारत में अंग्रेजों की सभ्यता की एक प्रतिमूर्ति स्थापित कर रखना चाहता था। अपनी इसी अभिलाषा के कारण उसका अंग्रेजों के साथ विरोध भी उत्पन्न हुआ क्योंकि अंग्रेज पूंजीवादी राजनीतिक जनतंत्र को सर्वथा अपने उपभोग की चीज समझते थे निर्यात सामग्री नहीं। उठते पूंजीपति वर्ग के इसी दोहरे स्वरूप की अभिव्यक्ति भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रारम्भिक नेताओं की नरमदली राजनीति में होती थी।

पर धीरे-धीरे विकसित होता हुआ यह वर्ग "नरमदली राजनीति" की मर्यादाओं से आगे बढ़ गया। पूंजीवादी बुद्धिजीवी निरन्तर विकसित हो रहे थे व्यावसायिक और औद्योगिक पूंजीपति-वर्ग की आर्थिक ताकत धीरे-धीरे पर लगातार रूप से बढ़ रही थी। भारत को आधुनिक स्थिति में लाने के स्वामियों के अपने प्रयास में दोनों ने अनुभव हासिल किये। और सबसे बड़ी बात यह हुई कि जापान और चीन जैसे पूर्वी देशों में जनवादी आंदोलन का सूत्रपात होने लगा था तथा १९०५ की रूसी क्रान्ति हुई थी। इस सबकी बदौलत गरमदली राजनीति का जन्म हुआ। गोखले दादाभाई नौरोजी आदि पुराने नेताओं के मुकाबले में तिलक आदि जैसे नये नेता मैदान में आये। स्वामिभक्तिपूर्ण आंदोलन के पुराने रूपों — अर्थात् प्रस्ताव पास करना और प्रतिनिधि मंडल ले जाना आदि — के बदले जनोन्मुख आंदोलन का नया रूप जन्म लेने लगा। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जनता को गोलबंद करने में यह नया रूप इतना शक्तिशाली बन गया कि शासक थर्रा उठे।

आंदोलन के इस नये जनोन्मुख रूप ने ही प्रसिद्ध नेताओं लाला लाजपत राय बाल गंगाधर तिलक और विपिनचन्द्र पाल को लोकप्रियता प्रदान की। तिलक को जब ६ वर्ष का कारावास दंड मिला तो वह राष्ट्रीय आंदोलन के प्रथम जनप्रिय नायक बन गये। इसी ने बंग-भंग के प्रश्न पर समूचे देश को आंदोलित कर दिया और स्वदेशी के आंदोलन को जन्म दिया। स्वदेशी का आंदोलन देश की आर्थिक आजादी का सबसे पहला राष्ट्रव्यापी आंदोलन था। और इसी सब-वातावरण के फलस्वरूप बंगाल पंजाब और उत्तर प्रदेश आदि में वह आंदोलन शुरू हुआ जिसे "आतंकवाद" का गलत नाम दिया जाता है। इस आंदोलन का बंगाल में अनुशीलन और युगान्तर समिति तथा पंजाब में गदर पार्टी जैसे क्रान्तिकारी संगठनों ने नेतृत्व किया।

१९०६ के सूरत कांग्रेस में नये और पुराने में खुलकर टक्कर हुई। इसके फलस्वरूप दोनों समूह अलग-अलग हो गये और उनमें से एक यानी "गरम दल" एक प्रकार से कांग्रेस से निकाल बाहर किया गया।

पर फूट की मुख्य जड़ बहुत दिनों तक नहीं रही। कारण यह था

कि समूचे औपनिवेशिक जगत को झकझोर देने वाला और एशिया के कई देशों में राष्ट्रीय आजादी के संग्राम को जन्म देने वाला प्रथम विश्व युद्ध नरम-दलियों को भी उस स्थान पर अधिक दिनों तक बना नहीं रहने दे सकता था जहां वे सूरत कांग्रेस के समय खड़े थे। मित्र राष्ट्रों के राज नेताओं ने सभी देशों के आत्म-निर्णय का नारा बुलन्द किया था विश्व युद्ध के दौरान समूची दुनिया में और औपनिवेशिक तथा पराधीन देशों के अन्दर साम्राज्यवाद-विरोध की लहर फैल गयी थी। इससे भारतीय पूंजीवादी वर्ग के सबसे "वफादार" और "नरम" राजनीतिज्ञों को भी यह भरोसा हो गया कि यदि हम "गरम दलियों" द्वारा दस साल पहले पेश की गयी कार्यनीति को ही अपनायें तो अपनी राजनीतिक शक्ति बढ़ा सकते हैं।

इस बदली हुई परिस्थिति ने दोनों दलों के बीच सुलह का रास्ता साफ कर दिया। सूरत की फूट के दस वर्ष के अन्दर ही प्रसिद्ध लखनऊ कांग्रेस (१९१६) में दोनों दलों के बीच एकता हो गयी। "नरम दल" और "गरम दल" में मेल के साथ ही कांग्रेस और मुस्लिम लीग में एक समझौता हुआ। सुप्रसिद्ध लखनऊ समझौते में कांग्रेस द्वारा परिकल्पित नवीन राजनीतिक व्यवस्था में मुसलमानों को कुछ खास सुविधायें प्रदान की गयी। इन समझौतों से देश भर में धीरे-धीरे विकसित हो रहे होम रूल आन्दोलन को भारी बल मिला। दो होम रूल लीगों की स्थापना हुई। एक की नेत्री श्रीमती एनी बेसेंट थीं, दूसरे के नेता बाल गंगाधर तिलक थे। इन लीगों की स्थापना से लखनऊ के दोनों समझौतों ने एक शक्तिशाली राष्ट्रव्यापी जन-आन्दोलन का रूप धारण कर लिया जिसका उद्देश्य देश के प्रशासन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना था।

इस प्रकार पूरा पूंजीपति वर्ग राष्ट्रीय राजनीतिक संघर्ष के अखाड़े में उतर रहा था। ऐक्यबद्ध पूंजीपति वर्ग समूचे राष्ट्र को होम रूल के सीधे-सादे नारे के पीछे लामबंद करने की कोशिश कर रहा था। इसी समय गांधी जी दक्षिण अफ्रीका के अपने अनूठे आन्दोलन का अनुभव लिये हुए भारत लौटे। गांधी जी के सभी आन्दोलनों की तरह इसकी भी बहुतों ने प्रशंसा की थी तो बहुतों ने उसका मजाक भी बनाया था।

नरमदली हों या गरमदली कांग्रेस के अनुगामी हों या लीग के श्रीमती बेसेंट की होम रूल लीग के सदस्य हों या तिलक की लीग के पूंजीपति वर्ग के सभी राजनीतिज्ञ गांधी जी के उस कौशल के प्रशंसक थे जिसकी बदौलत उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीय मजदूरों को जगाया था और शासकों को आंशिक रूप से उनकी मांगें पूरी करने को विवश किया था। पर उन्हें गांधी जी का दर्शन अथवा उनके द्वारा चलायी गयी लड़ाइयां उतनी पसन्द न थी।

पूंजीवादी-जनवादी राजनीतिक आंदोलन के सभी मत आधुनिक पूंजीपति वर्ग के राजनीतिक आंदोलन को अपना आधार मानते थे। इस वर्ग का दार्शनिक दृष्टिकोण ही उनके क्रिया-कलाप का पथ-निर्देशक था। नरमपंथी या गरमपंथी राजनीति उनके लिए आधुनिक पूंजीवादी देशों की खास कर ब्रिटेन की राजनीति का (टोरी और लिबरल राज नीति का) प्रतिरूप थी। पर यह नया आदमी जो आया था यह आधुनिक पूंजीपति वर्ग के दर्शन अर्थशास्त्र समाजशास्त्र अथवा राजनीति-विज्ञान को अपना आधार नहीं मानता था। उसका आधार तो हिन्दू धर्म था जिसमें ईसाई धर्म का साफ पुट मिला हुआ था। पुराने राजनीतिज्ञों को यह आदमी धर्म-निरपेक्ष राजनीति के मूलभूत सिद्धान्त का ही निषेध करता ज्ञात हुआ।

पर दो-तीन वर्ष के अन्दर ही उन्होंने उसको उस प्रबल जन आंदोलन का नेता स्वीकार कर लिया जिसका लक्ष्य ठीक वही था जिसकी सिद्धि के लिए गरम दल और नरम दल में तथा कांग्रेस और लीग में उन्होंने मेल कराया था। यह आश्चर्यजनक बात हो सकता है लेकिन उसी हालत मे यदि हम तथाकथित गांधीवादी कार्यविधि के मुख्य तत्वों को ठीक-ठीक नहीं समझते हों और यह नहीं देखते हों कि किस प्रकार यह कार्यविधि प्रथम विश्व युद्ध के बाद की राष्ट्रीय राज-नीतिक परिस्थिति में लागू की गयी और किस तरह इसे उस उद्देश्य की सिद्धि हुई जिसके लिए पूरा पूंजीपति वर्ग १९१६ मे एकताबद्ध हुआ था।

गांधी जी तथा उस समय के दूसरे राजनीतिज्ञों में एक अन्तर यह

था कि गांधी जी ग्राम जनता उसके जीवन उसकी समस्याओं भाव नाओं और परम्पराओं के साथ सम्बंध रखते थे जब कि दूसरे राजनीतिज्ञ यह नहीं करते थे। राजनीति गांधी जी के लिए राजनीति के पंडितों के बीच उच्च-स्तरीय वादविवाद की वस्तु न थी। राजनीति को वह जन हित की निस्स्वार्थ सेवा और जनता की सभी चीजों के साथ एकात्मता स्थापित करने की चीज मानते थे। व्यावहारिक गांधीवाद की यह विशेषता दक्षिण अफ्रीका के संघर्ष में ही प्रकट हो चुकी थी। जैसा कि हम देख चुके हैं, उस संघर्ष में गांधी जी ने साधारण-जनों के सरल और निष्ठापूर्ण काम से प्रेरणा एवं सम्बल प्राप्त किया था।

ग्राम जनता के साथ निकट सम्पर्क रखने की तथा जनता के रहन-सहन की हालतों और उसके मसलों की जानकारी हासिल करने की इस प्रेरणा की बदौलत ही गांधी जी धीरे-धीरे राजनीति की ऐसी कार्यविधि विकसित कर सके जो गरम दल की कार्यविधि से उतनी ही भिन्न थी जितनी कि नरम दल की कार्यविधि से। श्री तेन्दुलकर ने बताया है कि इस कार्यविधि का सबसे पहले भारत में किस प्रकार उपयोग किया गया।

> जनवरी के मध्य में गांधी जी अपने रिश्तेदारों से मिलने राजकोट और पोरबन्दर गये। एक गरीब यात्री जैसे कपड़े पहने वह तीसरे दर्जे में सफर कर रहे थे।
>
> "बीच में बधवां स्टेशन पड़ता है। यहां मोतीलाल नामक एक जनसेवी जो पेशे से दर्जी थे गांधी जी से मिलने आये। उन्होंने गांधी जी को बताया कि कुख्यात वीरमगांव चुंगी-नाके की वजह से मुसाफिरों को भारी परेशानी उठानी पड़ती है।
>
> गांधी जी सहसा पूछ बैठे क्या आप जेल जाने को तैयार हैं ? अगर आप हमारा नेतृत्व करें, तो हम अवश्य जेल जायेंगे मोतीलाल जी ने उत्तर दिया।

गांधी जी ने वीरमगांव के चुंगी-नाके का सवाल अपने हाथ में ले लिया और बम्बई सरकार के साथ पत्र-व्यवहार करने लगे। इस

पत्र-व्यवहार का कोई नतीजा नहीं निकला। पर कुछ समय के बाद जब गांधी जी की वायसराय से मुलाकात हुई तो यह मामला निपट गया—नाका अन्ततः तोड़ दिया गया।

इसके बाद ही एक और मामला आया जिसमें गांधी जी ने यही कार्यविधि अपनायी। यह चम्पारन (बिहार) के निलहों का मामला था। चम्पारन का जन-आंदोलन वीरमगाम से कहीं उच्च स्तर का था क्योंकि यहां मामला निपटाने के लिए संघर्ष करना पड़ा। वस्तुतः गांधी जी के नेतृत्व में भारत में चलने वाला यह प्रथम जन-आंदोलन था।

चम्पारन का आंदोलन बहुत ही महत्वपूर्ण था। इसके कई कारण हैं। एक तो यह आंदोलन अंग्रेज निलहों के विरुद्ध चलाया गया था। दूसरे इसमें जनता की मांगों को लेकर लड़ने के लिए उस समय के कुछ सर्वश्रेष्ठ युवा बुद्धिजीवी मैदान में उतरे थे। इनमें राजेन्द्र प्रसाद, मज-हरुल हक और जे बी कृपलानी बाद में गांधी जी के घनिष्ठतम सहयोगी और शिष्य बने। तीसरे योरपीय निलहों और उनके सरपरस्त सरकारी हाकिमों की सख्त मुखालिफत के बावजूद इस आंदोलन ने विजय प्राप्त की। यह मानो गांधी जी द्वारा बाद में छेड़े जाने वाले राष्ट्रीय संघर्षों का रिहर्सल था। यह ऐसा आंदोलन था जिसमें मध्य और ऊपरी तबकों से आने वाले कुछ निस्वार्थ व्यक्तियों के एक समूह ने ग्राम जनता के साथ एकात्मता स्थापित की और सुनिश्चित मांगों की पूर्ति के लिए सत्तारूढ़ शासकों के विरुद्ध उसे जगाया।

अहमदाबाद के कपड़ा मिल-मजदूरों की फरवरी-मार्च १९१८ की हड़ताल में गांधी जी का हस्तक्षेप भी अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना थी यद्यपि इसका महत्व बिलकुल दूसरे ही पहलू से था। यह पहला मौका था जब गांधी जी ने मजदूरों और पूंजीपतियों के झगड़े में अपनी कार्य-विधि इस्तेमाल की थी। जिस ढंग से उन्होंने इस संघर्ष का नेतृत्व किया और धीरे धीरे गांधीवादी ट्रेड यूनियन शैली विकसित की उसका हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के विकास में मजदूर वर्ग आंदोलन पर पूंजीवादी नेतृत्व के विकास में बहुत बड़ा महत्व रहा है।

गांधी जी ने हड़ताल का सफल नेतृत्व करने की एक नयी विधि निकाली और ये शर्तें सामने कीं : कभी हिंसा का सहारा न लेना, हड़ताल-तोड़क मजदूरों को न छेड़ना, दान का आश्रय न लेना, हड़ताल चाहे जितनी लम्बी चले दृढ़ बने रहना और हड़ताल के दौरान ईमानदारी से मेहनत करते हुए रोटी कमाना।

हड़ताली हजारों की संख्या में गांधी जी की सभाओं में आते थे और गांधी जी उन्हें अपने व्रत की तथा शान्ति एवं आत्मसम्मान बनाये रखने के कर्तव्य की याद दिलाते थे। मजदूर रोज अहमदाबाद की सड़कों पर शान्तिपूर्ण जलूस निकालते उनके हाथों में झंडे होते जिस पर एक टेक लिखी होती।

"पर परिस्थिति बिगड़ने लगी। गांधी जी बुनकरों को दान लेकर जीवनयापन करके अपनी मर्यादा नष्ट करने की अनुमति नहीं प्रदान करते थे। पर हजारों लोगों को कुछ काम दिलाना आसान न था। आखिरकार मजदूरों में थकान आने लगी। गांधी जी को डर हुआ कि वे कहीं दंगा-फसाद न शुरू कर दें और इस तरह अपना मामला बिगाड़ न लें।

गांधी जी के शब्दों में बीस दिन गुजर गये। अब और मिल-मालिकों के दूत रंग लाने लगे थे। मजदूरों के कान में शैतान फुसफुसा कर कह रहा था कि दुनिया में भगवान जैसी कोई ताकत नहीं जो तुम्हारी मदद करेगी और टेक आदि ग्रहण करना तो कायरों का हथकंडा है'।

१२ मार्च को सवेरे मजदूरों की एक सभा में गांधी जी के मन में सहसा एक विचार आया। वह बोले आओ अपने टेक की रक्षा के लिए हम दोनों ही उपवास करें। उनके मुंह से बार ही बार ये शब्द निकले जब तक हड़ताली समझौता हो जाने तक हड़ताल जारी नहीं रखते या मिल को ही नहीं छोड़ जाते, तब तक मैं अन्न ग्रहण नहीं करूंगा।

हड़ताली इस त्याग के लिए तैयार न थे। वे बोले आप क्यों उपवास करेंगे उपवास हम करेंगे। आपका उपवास

करना ज्यादती होगी। हमारी बात माफ़ कर दें हम लोग अब अन्त तक अपनी टेक पर अड़े रहेंगे ।

गांधी जी का यह पहला अनशन नहीं था। लेकिन मज़दूर जनता के बदीपन पर अंकुश लगाने के लिए अनशन करने का यह पहला मौका जरूर था। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह थी कि इसका इस्तेमाल वह किसी ऐसे आंदोलन में नहीं कर रहे थे जिसमें सभी वर्ग भाग ले रहे हों बल्कि मजदूर वर्ग के संघर्ष में कर रहे थे। उनके इस प्रयोग की सफलता उस वर्ग के लिए जिसका वह नेतृत्व करते थे अर्थात् पूंजीपति वर्ग के लिए एक अमूल्य सबक साबित हुआ। उन्होंने देखा कि संघर्ष की एक ऐसी भी कार्यविधि उपलब्ध है जो आम जनता को संघर्ष के मैदान में उतारने के साथ ही उसे जंगी कार्रवाइयों से दूर रख सकती है।

पर बीरमगांव चम्पारन और अहमदाबाद वाले विराट जन आंदोलनों के मानो अभ्यास मात्र थे क्योंकि इनका सम्बन्ध जनता के खास हिस्सों की आर्थिक मांगों से था। दूसरी ओर, पूरी जनता की मांग स्वराज की मांग थी। यह आवश्यक था कि गांधी जी इस राष्ट्रीय मांग की प्राप्ति के लिए भी अपनी कार्यविधि का प्रयोग करते।

गांधी जी ने अहिंसा का उपदेश देते हुए भी विश्व युद्ध के दिनों में गुजरात के खेड़ा जिले में अंग्रेजों के युद्ध के लिए तोप का चारा जुटाने का काम किया था। उनका नारा था "हर गांव से २ रंगरूट।"

उन्होंने तर्क किया था स्वराज प्राप्त करने का सब से आसान और सीधा तरीका साम्राज्य-रक्षा में हाथ बंटाना है।

पर गांधी जी तथा अन्य राजनीतिज्ञों ने जो उम्मीदें बांधी थीं वे पूरी नहीं हुईं। होम रूल देना तो दूर रहा अंग्रेजों ने राष्ट्रीय आंदोलन पर नये-नये हमले शुरू कर दिये। मांटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड सुधार के प्रस्ताव ने राष्ट्रीय मांगों को अंगूठा दिखा दिया। "नरम से नरम राजनीतिज्ञ भी उससे निराश हुए। ऊपर से रौलेट बिल पेश कर दिया गया। इसमें विदेशी शासन के विरुद्ध उठने वाले हर आंदोलन को कुचल डालने के लिए सरकार को नये-नये अधिकार प्रदान किये गये थे। जनमत मांटेग्यू चेम्सफ़ोर्ड प्रस्ताव और रौलेट बिलों के विरुद्ध विक्षुब्ध हो उठा था।

इसी परिस्थिति में गांधी जी की अहिंसा की चारदीवारी में राजनैतिक जन-आंदोलन की अपनी कार्यविधि इस्तेमाल करनी थी। वह जानते थे कि यद्यपि उनके विचार अधिकाधिक जनता द्वारा स्वीकार किये जा रहे हैं पर उनको कांग्रेस के अनेक मान्य नेताओं की सख्त मुखालिफत का सामना करना पड़ेगा। अतः उन्होंने कांग्रेस से अलग और उससे स्वतंत्र रहकर अपनी संगठन समिति की।

रौलट बिल के गजट में प्रकाशित होते ही गांधी जी ने अपने सत्याग्रह आश्रम में एक सम्मेलन आयोजित किया। इस सम्मेलन में एक *सत्याग्रह-शपथ तैयार की गयी और वल्लभभाई पटेल सरोजिनी नायडू* जी जी हार्निमैन उमर सुभानी शंकरलाल बैंकर और अनुसूया बेन ने उस पर हस्ताक्षर किये। हस्ताक्षर-कर्ताओं ने शपथ ली कि इन बिलों को अगर कानून का रूप दिया गया और वे रद्द न किये गये तो हम इन कानूनों की सविनय अवज्ञा करेंगे। उन्होंने यह भी शपथ ग्रहण की कि "इस संघर्ष में हम निष्ठापूर्वक सत्य का पालन करेंगे और किसी के जीवन शरीर या सम्पत्ति के प्रति कभी हिंसा न करेंगे।

गांधी जी ने बम्बई में एक सत्याग्रह सभा की स्थापना की जिसने सत्याग्रह-शपथ पर हस्ताक्षर एकत्र करना शुरू किया। पन्द्रह दिन के अन्दर १० हजार आदमी इस सभा में भर्ती हो गये। मार्च १ १ में सभा ने एक बयान निकाला जिसमें कहा गया था सत्याग्रह-शपथ में जिस समिति की परिकल्पना की गयी है उसने सलाह दी है कि फिलहाल जब्त साहित्य और अखबारों की रजिस्ट्री से सम्बन्धित कानूनों की सविनय अवज्ञा की जायेगी। समिति ने जब्त साहित्य की एक सूची तैयार *की जिसका प्रचार करने का निश्चय किया गया। इस सूची में हिन्द* स्वराज सर्वोदय, और सत्याग्रही की कहानी आदि थे।

रौलट बिल विरोधी आन्दोलन के कार्यक्रम के सिलसिले में गांधी जी ने आम हड़ताल करने का प्रस्ताव रखा। ६ अप्रैल १ १ को रोज हड़ताल की तारीख तय की गयी। इस हड़ताल में रौलट बिल के विरुद्ध एक देशव्यापी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ जो देश के एक छोर से दूसरे छोर तक फैल गया। अमृतसर में जनता का आवेश और नौकरशाही की

करता चरम सीमा पर पहुंच गयी। यहीं जलियांवाला बाग का भीषण हत्याकांड हुआ।

खिलाफत आंदोलन छिड़ जाने से गांधी जी और उनके असहयोग कार्यक्रम को नया बल मिला। इसका कारण यह था कि असहयोग के हिमायतियों में उन मुस्लिम मौलवियों का पूरा बल शामिल हो गया जो खिलाफत के सवाल को मजहब और सियासत का मिलाजुला सवाल समझता था। गांधी जी ने अंग्रेजों के खिलाफ शिकायतों की सूची में इस मांग को भी चतुरतापूर्वक सम्मिलित कर लिया।

गांधी जी जानते थे कि मुस्लिम मौलवियों के मन में मुख्य चीज यह न थी कि वे अहिंसा में विश्वास करते हैं। पर गांधी जी एक प्रबल शक्तिशाली जन-विद्रोह विकसित करने को व्यग्र थे। इसलिए उन्होंने यह आग्रह नहीं किया कि खिलाफत के नेता भी 'अहिंसा' का सिद्धान्त स्वीकार कर।

स्वतंत्र रूप से सत्याग्रही जत्था संगठित करना रौलट बिल और पंजाब के अत्याचारों जैसे जनमत को आंदोलित करने वाले राजनीतिक प्रश्नों को लेकर सफल प्रचार कार्य खिलाफत के सवाल पर मुसलमान मौलवियों के साथ एकता — इस सब की बदौलत गांधी जी अकेले ही अपनी ओर से १ अगस्त १९२ को असहयोग आंदोलन का बिगुल फूंकने मे समर्थ हुए। पंडित मदनमोहन मालवीय जैसे नेताओं ने जब यह एतराज किया कि गांधी जी को कांग्रेस के फैसले का इन्तजार करना चाहिए था तो गांधी जी ने यह जवाब दिया

> "कांग्रेस के प्रति मेरी वफादारी का तकाजा यह है कि उसकी नीति का तब पालन करू जब वह मेरी अन्तरात्मा के विपरीत न हो। अगर मैं अल्पमत में हूं तो कांग्रेस के नाम पर अपनी नीति का अनुसरण न करू। अत: किसी सवाल पर कांग्रेस के फैसले का मतलब यह नहीं है कि कोई कांग्रेस-जन इसके विपरीत कोई कार्य न करे। लेकिन अगर वह विपरीत कर्म करता है तो निजी जोखिम पर करता है और यह जानकर करता है कि कांग्रेस उसके साथ नहीं है।

गांधी जी ने मौलाना शौकत अली और अन्य लोगों के साथ देश भर में दौरा किया और रौलट बिल पंजाब कांड तथा खिलाफत के सवालों पर जनता को जाग्रत किया। कांग्रेस के ४ से ९ सितम्बर १९२० को होने वाले कलकत्ता विशेषाधिवेशन पर इसका असर पड़ा। गांधी जी की पहल पर कांग्रेस ने प्रगतिशील अहिंसक असहयोग सम्बंधी अपना प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव के व्यवहार्य अंश में कहा गया था

> "कांग्रेस की राय में भारती जनता के सामने इसके सिवा कोई रास्ता नहीं रह गया है कि वह प्रगामी अहिंसक असहयोग नीति को तब तक के लिए अनुमोदित और स्वीकृत करे जब तक कि उपरोक्त अन्यायों का निराकरण नहीं हो जाता और स्वराज की स्थापना नहीं हो जाती।
>
> "और चूंकि प्रारम्भ उन वर्गों द्वारा ही होना चाहिए जिन्होंने अभी तक जनमत को बनाया और उसका प्रतिनिधित्व किया है, चूंकि सरकार लोगों को सम्मान और उपाधियां देकर, अपने नियंत्रित स्कूलों के जरिए, अपनी अदालतों और अपनी विधान परिषदों के जरिए अपनी सत्ता को सुदृढ़ बनाती है, और चूंकि आंदोलन की मौजूदा हालत में यह वांछनीय है कि कम-से कम जोखिम उठाया जाय और अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कम-से-कम त्याग के लिए आह्वान किया जाय इसलिए कांग्रेस की सिफारिश है कि
>
> (क) लोग अपनी उपाधियां लौटा दें और अवैतनिक पदों तथा स्थानीय स्वशासन संगठनों की मनोनीत सदस्यता से इस्तीफा दे दें
>
> (ख) सरकारी जलसों दरबारों और सरकारी अफसरों द्वारा अथवा उनके सम्मान में आयोजित सरकारी या अर्ध सरकारी समारोहों में भाग लेने से इनकार कर द
>
> (ग) बच्चों को धीरे-धीरे स्कूलों और कालेजों से हटा लें

"(ग) वकील और मुकदमेबाज धीरे-धीरे ब्रिटिश अदालतों का बायकाट करें और आपसी झगड़ों को निपटाने के लिए पंच अदालतें कायम करें,

"(घ) फौजी जवान, क्लर्क और मजदूर मेसोपोटामिया में फौजी सेवा के लिए भर्ती होने से इनकार कर दें

(ङ) सुधार के अन्तर्गत कायम की जाने वाली कौंसिलों में कोई चुनाव के लिए न खड़ा हो और यदि कोई कांग्रेस की सलाह के खिलाफ चुनाव के लिए खड़ा होता है, तो मतदाता उसे वोट न दें

(च) विदेशी मालों का बायकाट करें।

इस प्रस्ताव का अध्ययन करने से गांधी जी के कार्यक्रम का सारतः वर्ग राजनीतिक स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। उसमें साफ-साफ कहा गया था कि असहयोग आंदोलन का सूत्रपात उन वर्गों द्वारा होना चाहिए जिन्होंने अभी तक जनमत को बनाया और उसका प्रतिनिधित्व किया है यानी पूंजीवादियों और निम्न-पूंजीवादियों को यह काम करना चाहिए। दूसरी चीज यह है कि इस कार्यक्रम में जिन चीजों को शामिल किया गया उनसे नौकरशाही सरकार परेशानी भले ही महसूस करती उसे भारी असुविधा का भले ही सामना करना पड़ता लेकिन साम्राज्यवादी शासन के मूल आधार पर उससे जरा भी आंच नहीं आती। ध्यान देने की बात है कि प्रस्ताव में औद्योगिक मजदूरों की आम हड़ताल अथवा किसानों के कर-बन्दी आंदोलन और जमीन पर कब्जा कर लेने जैसे नयी जन-आंदोलनों का सुझाव नहीं दिया गया था, संघर्ष के ऐसे रूपों को अपनाने का मशविरा नहीं दिया गया था जिनसे विदेशी शासकों के आर्थिक और राजनीतिक आधार पर धक्का लगने के साथ भारतीय पूंजीपतियों और जमींदारों के मुनाफों पर भी आंच आती। फौजी सेवा से इनकार करने की बात भी मेसोपोटामिया में सेवा करने से इनकार कर देने तक ही सीमित रखी गयी। अतः यह स्पष्ट है कि अहिंसक असहयोग के पीछे साम्राज्यवादी राज्यीय सत्ता की जड़ों पर

आघात करने की भावना न थी बल्कि यह भावना थी कि शासकों पर केवल उतना ही दबाव डाला जाये जितने से कि वे कांग्रेस के साथ समझौता करने को बाध्य हों।

इस सम्बंध में राजनीतिक आन्दोलन के एक रूप की हैसियत से औद्योगिक मजदूरों की संयुक्त हड़ताल के सवाल पर गांधी जी के वे शब्द गौर करने लायक हैं जो उन्होंने १८ अप्रैल १ १९ को कहे थे

> “दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह में कई हजार मजदूरों ने हड़ताल की थी। यह सत्याग्रह हड़ताल थी अतएव पूर्णतया शान्तिपूर्ण और स्वैच्छिक थी। जब यह हड़ताल चल रही थी उसी समय यूरोपीय खान मजदूरों और रेलवे कर्मचारियों आदि ने अपनी हड़ताल की घोषणा की। लोग मेरे पास आये कि मैं यूरोपीय हड़तालियों के आंदोलन के साथ अपने आंदोलन का सामंजस्य स्थापित करूं। लेकिन एक सत्याग्रही के नाते इस प्रस्ताव को ठुकराने में मुझे एक क्षण की भी देर न लगी। इतना ही नहीं। इस डर से कि हमारी हड़ताल को यूरोपियनों की हड़ताल के साथ जिसके तौर-तरीकों में हिंसा और हथियारों के इस्तेमाल को प्रमुख स्थान प्राप्त था एक ही लाठी से न हांक दिया जाये हमने अपनी हड़ताल ही बन्द कर दी। इसके बाद तो दक्षिण अफ्रीका के यूरोपियनों ने मान लिया कि हमारा सत्याग्रह सम्मानपूर्ण और ईमानदारी का आंदोलन है। जनरल स्मट्स के शब्दों में वैधानिक आन्दोलन है'। संकट की इस घड़ी में इससे कम मैं क्या कर सकता हूं।

हिंसा के प्रति घृणा की इस भारी बाधा की जड़ में पूंजीवादियों का यह स्वाभाविक डर है कि यदि मजदूर वर्ग संघर्ष के अपने हथियार को अर्थात् राजनीतिक आम हड़ताल के हथियार को लेकर राजनीतिक आन्दोलन में कूद पड़ा तो आन्दोलन पूंजीवादियों द्वारा खींची गयी सीमा रेखा के बाहर निकल जायगा। इसीलिए गांधी जी जिनको साम्राज्यवाद के रक्तरंजित युद्ध के लिए तार का चारा जुटाने में कोई हिचक नहीं

हुई थी साधारण जनों मजदूरों और किसानों के संगठित राजनीतिक शक्ति के रूप में मैदान में उतरने पर होनेवाली हिंसा की इक्की-दुक्की घटनाओं पर कांप उठते थे।

इसीलिए उन्होंने सूदखोर महाजनी कर्जों को रद्द कर देने लगान में भारी कमी करने और जमींदारों की जमीन किसानों में वितरित करने आदि जैसी मंसोबे व गरीब किसानों और भूमिहीन मजदूरों की मांगों को अपने कार्यक्रम में सम्मिलित करने से बराबर इनकार किया। अधिक से अधिक वे जहां तक जाने को तैयार थे और गये वह कांग्रेस के दिसंबर १९२१ के नागपुर अधिवेशन के प्रस्ताव में शामिल निम्नांकित मांग थी

> अहिंसक असहयोग सम्बन्धी अपने प्रस्ताव की फिर से पुष्टि करते हुए यह कांग्रेस घोषणा करती है कि अहिंसक असहयोग योजना जिसमें एक ओर सरकार के साथ स्वेच्छापूर्ण सहमिलन का परित्याग करने की बात है तो दूसरी ओर कर-बंदी है पूर्णत: या अंशत: कांग्रेस अथवा अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी द्वारा निर्दिष्ट तारीख से कार्यान्वित की जायेगी।

अत: हम देखते हैं कि गांधी जी अधिक-से-अधिक कर-बंदी तक जाने को तैयार थे। इस सीमा तक धनी किसान और यहां तक कि जमींदार भी उनका साथ देते।

लेकिन उन दिनों साधारण जनता अपने कार्य पर अंकुश स्वीकार करने को तैयार न थी। विद्रोह का आह्वान सुनते ही—बावजूद इसके कि यह केवल अहिंसक विद्रोह का आह्वान था—किसान काश्तकार और मजदूर आदि अपने-आप अत्याचारों के विरुद्ध उठ खड़े हुए। कारखानों और बागान मजदूरों की हड़तालें हुई और किसानों में तीव्र असंतोष के आसार प्रकट हुए। इस सबके फलस्वरूप ऐसी घटनाएं हुई जिनके बारे में गांधी जी को आशा थी कि वह इन्हें रोक सकेंगे। श्री तेन्दुलकर ने इस नई परिस्थिति का इन शब्दों में वर्णन किया है

> कांग्रेस कार्यक्रम के लिए भर्ती होने वाले बहुत से नये लोगों पर एक नशा-सा सवार था। नये दमन और गिरफ्तारी की

भावना घूमंतर हो गयी थी। दूर-दूर के गांवों में भी लोग कांग्रेस स्वराज्य पंजाब-कांड और खिलाफत की बातें करने लगे थे। बहुत से देहाती इलाकों में तो लोगों ने खिलाफत शब्द का एक मनचाहा अर्थ निकाल लिया था। वे समझते थे कि खिलाफत शब्द खिलाफ से बना है यानी सरकार के खिलाफ। राष्ट्रीयता धर्म और रहस्यवाद का एक अजीब समां बंध गया था।

लेकिन गांधी जी "इस शैतान सरकार" के प्रति असहयोग के अपने आह्वान का आम जनता से यह शानदार उत्तर पाकर प्रसन्न नहीं हुए, बल्कि वह "अहिंसा और सत्य" के वातावरण का अभाव देखकर भयभीत हो उठे।

सबसे पहले उन्होंने रौलट एक्ट विरोधी आंदोलन के समय अपना यह भय प्रकट किया। उनके अपने ही शब्दों में "मैंने अपने कदम वापस के लिये इसे हिमालय समान भूल कहा, ईश्वर और मानव के सम्मुख नत-मस्तक हुआ और न केवल सार्वजनिक सविनय अवज्ञा बन्द कर दी बल्कि खुद अपनी भी सविनय अवज्ञा स्थगित कर दी जिसका उद्देश्य सविनय और अहिंसक रहना था।" और १९२२ में चौरीचौरा कांड के समय उन्होंने पूरी तौर से महसूस किया कि जिस आम सविनय अवज्ञा की उन्होंने परिकल्पना की थी और जिसकी तैयारी वह कर रहे थे वह उनके हाथ से एकदम निकल जा सकती थी। इसी समय उन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन स्थगित कर देने का फैसला किया।

चौरीचौरा की घटना अकेली घटना न थी। उससे पहले मलाबार का विद्रोह हुआ था जिसे आम तौर से मोपला विद्रोह के नाम से पुकारा जाता है। उसमें जनता ने असहयोग के गांधी जी के आह्वान के साथ किसानों की जमींदार-विरोधी मांगें लगाकर हो गयी थीं। फलतः मलाबार के अत्याचार पीड़ित किसान लाखों की संख्या में मैदान में उतर पड़े। देश के अन्य भागों में भी हजारों युवक और अधेड़ लोग गांधी जी की पुकार पर स्कूल, कालेज और अदालतों से बाहर निकल आये और असहयोग के पुरातनों अलमबरदार बन गये। ये लोग किसानों के बीच गये और उन्होंने लगान न देने जैसे अत्यधिक जोरी कदमों से राहत

दिलाने और उनकी ऐसी ही अन्य मांगों का समर्थन किया। यह आंदोलन जिसका सूत्रपात गांधी जी के मतानुसार उन वर्गों द्वारा होना चाहिए था जिन्होंने अब तक जनमत को बनाया और उसका प्रतिबिम्बित किया है इन वर्गों द्वारा निश्चित सीमा-रेखा के बाहर निकलता जा रहा था और एक सच्चा राष्ट्रीय आंदोलन बन रहा था।

एक बात और। आंदोलन में एक बार खिंच आने के बाद नये वर्ग अर्थात् किसानों ने संघर्ष और संगठन के अपने नये-नये रूप निकाले। उदाहरण के लिए, मलबार के विद्रोह में जमींदारों की दस्तावेज जलायी गयीं रजिस्ट्री दफ्तरों में आग लगायी गयी सरकारी दफ्तरों पर हमले किये गये पुलिस के हथियार छीना लिये गये जनता की अदालतें कायम की गयी और जमींदारों की हवेलियों से अनाज तथा दूसरी चीजें निकालकर गांव वालों को बांट दी गयीं।

चौरीचौरा में भी यह देखा गया कि राज्यसत्ता के साथ किसानों का एक बार सीधा सामना हो जाने पर ऐसी घटनाओं का यानी आंदोलन के ऐसे रूपों का अपनाया जाना लाजमी हो जाता है जो अहिंसा की गांधी जी की परिभाषा के अन्दर नहीं आते।

गांधी जी ने लिखा— मलबार से चेतावनी मिली थी लेकिन मैंने उस पर ध्यान न दिया। आखिर भगवान ने चौरीचौरा में अपना संदेश स्पष्ट कर दिया। उन्हें इस बात में कोई सन्देह न था कि चौरी-चौरा में पुलिस ने लोगों को "बुरी तरह उकसाया था। इस उकसावे के फलस्वरूप ही भीड़ ने थाने में आग लगा दी और पुलिस वालों को मारा। लेकिन गांधी जी इस हिंसा को माफ करने के लिए तैयार न थे चाहे उसकी जड़ में पुलिस का उकसावा ही क्यों न रहा हो। वह साफ देख रहे थे कि किसानों के एक बार जाग्रत होकर मैदान में उतर आने पर उनकी अंग्रेजी राज के साथ बार-बार ऐसी मुठभेड़ें होना निश्चित है। वह ऐसी भयावह परिस्थिति के उत्पन्न होने की बात सोच भी न सकते थे। उन्होंने निर्णय किया कि आंदोलन को जारी रखना सत्य धर्म और भगवान के आगे पाप होगा। अतः सविनय अवज्ञा आंदोलन स्थगित कर दिया गया।

हुए थे। अहिंसा से नरम दल वाले खुश हो गये थे और साम्राज्य विरोधी जन-आंदोलन के आह्वान से गरम दल उत्साहित हुआ था। पर जनता के जंगी कार्यों के प्रति गांधी जी की घृणा और सविनय अवज्ञा आंदोलन को स्थगित कर देने में उनकी जल्दबाजी ने उन सभी बुनियादी सवालों को सामने ला दिया जिनको लेकर कांग्रेस पहले विभक्त हुई थी।

राष्ट्रीय मांग की पूर्ति के लिए संघर्ष का कौन-सा रास्ता अपनाया जाय? अंग्रेजों के साथ शान्तिपूर्ण वार्तालाप का रास्ता या उनके खिलाफ जंगी संघर्ष का मार्ग? अंग्रेजी राज के खिलाफ अविचल होकर संघर्ष चलाने के लिए देश की आम जनता को जत्थेबंद किया जाय या अंग्रेजों से अधिकाधिक सुधार हासिल करने के लिए वैधानिक मंच पर भरोसा किया जाय? गरम दल और नरम दल को विभाजित करने वाले ये सवाल एक बार फिर सामने आ गये। लेकिन इस बार उनका रूप कुछ दूसरा था।

गांधी जी के फैसले का विरोध करने वाले—मोतीलाल नेहरू लाजपत राय और अन्य महान् साम्राज्य-विरोधी लोग थे। इनमें से कुछ (मोतीलाल नेहरू) आरम्भिक काल में नरम दल वालों के साथ रह चुके थे। गांधी जी का नेतृत्व उन्होंने इसलिए माना था क्योंकि उन्होंने महसूस किया था कि आम जनता को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ मैदान में उतारने के ऐसे तरीके से साम्राज्यवाद पर भारी दबाव पड़ेगा। उन्हें उम्मीद थी कि इस दबाव से साम्राज्यवाद कांग्रेस के साथ वार्ता करने को बाध्य होगा और गांधी जी के नेतृत्व में छेड़े गये जन आंदोलन का कुशलता से उपयोग करके भारत अधिकाधिक वैधानिक सुधार हासिल कर लेगा। इसलिए हिंसा की घटनाओं से उन्हें परेशानी नहीं होती थी। ऐसी घटनाएं तो होती ही। कांग्रेस को केवल यह करना है कि वह उनकी जिम्मेदारी नहीं कबूल करे। गांधी जी की इस राय से वे सहमत नहीं थे कि ऐसी घटनाओं से आंदोलन उस सीमा रेखा से बाहर निकल जायेगा जिसमें रखने में ही उनके वर्ग की खैर थी। इसीलिए गांधी जी के फैसले की खबर पाकर वे क्षुब्ध हो उठे थे।

लेकिन आंदोलन तो स्थगित हो चुका था। अतः उन्होंने सवाल उठाया कि आगे क्या करना है? जो लोग यह तर्क पेश करते थे कि जनता धीरे-धीरे गांधी जी के अहिंसा सिद्धान्त को हृदयंगम कर लेगी और तब कांग्रेस गांधी जी द्वारा परिकल्पित अहिंसक संग्राम छेड़ सकेगी उनकी बात इनकी समझ में बिल्कुल न आती थी। वे गांधी जी के अहिंसक असहयोग मार्ग को विशुद्ध व्यावहारिकता की दृष्टि से देखते थे और सोचते थे कि इसके द्वारा अंग्रेजों को कांग्रेस के साथ समझौता वार्ता करने के लिए बाध्य किया जा सकता है। इसलिए वे इस नतीजे पर पहुंचे कि यदि सविनय अवज्ञा आंदोलन के स्थगन का अनुमोदन करना है तो कांग्रेस को नई कार्यनीतियों तलाश करनी चाहिए।

नई कार्यनीतियों की तलाश करते हुए ये लोग इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि नवस्थापित कौंसिलों का बायकाट न करके उनका इस्तेमाल किया जाय। उन्होंने कहा कि विधान परिषदों का बायकाट अहिंसक असहयोग और देशव्यापी सविनय अवज्ञा कार्यक्रम के अंग के रूप में बिल्कुल ठीक था लेकिन जब सविनय अवज्ञा का विचार स्थगित कर दिया गया तो ऐसे बायकाट में कोई तुक न रहा। उन्होंने इस विचार का खुला प्रचार ही नहीं किया बल्कि इस कार्यक्रम की पूर्ति के लिए एक नई पार्टी स्वराज्य पार्टी भी कायम कर डाली। लेकिन कांग्रेस-जनों के अल्पमत ने ही उनका साथ दिया। १ २२ में हुए कांग्रेस के गया अधिवेशन में ८९ के विरुद्ध १७४ वोटों से कौंसिल प्रवेश के कार्यक्रम को अस्वीकृत कर दिया। यह आम कांग्रेस-जनों की जमी भावना का द्योतक था। लेकिन अल्पमत में होते हुए भी स्वराज्य पार्टी वालों का कांग्रेस में भारी असर था। इसका कारण एक तो यह था कि इस दल के साथ कांग्रेस के कई विख्यात नेता थे। दूसरे कौंसिल प्रवेश के विरोधियों के पास कोई वैकल्पिक कार्यक्रम न था। स्वराज्य दल वालों और यथास्थिति वालों का संघर्ष जब शुरू हुआ और आगे बढ़ा उस समय गांधी जी जेल में थे। (सविनय अवज्ञा आंदोलन बंद कर देने के कुछ ही दिनों बाद गांधी जी गिरफ्तार करके जेल में डाल दिये गये थे।)

अत जिस समय गांधी जी जेल से छूटे उस समय तक कांग्रेस दो शिविरों में बंट चुकी थी। स्थिति यहां तक पहुंच चुकी थी कि संगठन दो टुकड़ों में बट जाने वाला था। अत गांधी जी ने फूट खत्म करने और कांग्रेस के दोनों शिविरों को एक करने के सवाल को अपने हाथ में लिया। उन्होंने परिस्थिति को अच्छी तरह समझ लिया था और देख लिया था कि कौंसिल प्रवेश निश्चित तथ्य बन चुका है। वह जानते थे कि जिस सवाल पर कांग्रेस के नेताओं में इतना तीव्र मतभेद हो उस सवाल को बहुमत वोट के जरिए हल नहीं किया जा सकता। उन्होंने सवाल को इस तरह पेश किया

> क्या असहयोगवादी स्वराजियों की कार्यविधि की अपनी मुखालिफत जारी रखेंगे या तटस्थ बन जायेंगे और जहां संभव हो वहां उनकी मदद भी करेंगे? अगर स्वराजियों का काम आगे बढ़ता है और देश को लाभ पहुंचता है तो इससे मेरे जैसे उन्हें शंकालुओं को अपनी भूल का यकीन हो जायगा। दूसरी ओर, मैं जानता हूं कि स्वराजियों में ऐसी देशभक्ति है कि अनुभव ने यदि उनके भ्रम को दूर कर दिया तो वे अपने कदम वापस ले लेंगे। इसलिए उनके मार्ग में बाधा डालने या विधान-सभाओं में उनके प्रवेश करने के विरुद्ध प्रचार करने में मैं शरीक नहीं होऊंगा। पर एक ऐसे कार्य में जिसमें मेरी आस्था नहीं है मैं सक्रिय होकर उनकी सहायता भी नहीं कर सकता।

इस तरह से गांधी जी ने स्वराजियों को अपना आशीर्वाद प्रदान किया। यथास्थिति चाहने वाले राजगोपालाचारी वल्लभभाई पटेल और राजेन्द्र प्रसाद जैसे उनके सहयोगी इसे पसन्द नहीं करते थे। अत गांधी जी ने उन्हें समझाया कि उनकी यथास्थिति की कार्यनीति की श्रेष्ठता स्वराजी कार्यक्रम का लगातार विरोध करके प्रमाणित नहीं की जा सकती। इसके लिए तो विधान सभा के बाहर निरन्तर काम करना होगा। उन्होंने कहा कि स्वराजियों के कौंसिलों में फंसने से आजादी की लड़ाई में कोई विशेष सफलता नहीं मिलनेवाली है। सफलता का एकमात्र

मार्ग तो जनता के बीच अनवरत कार्य करना और देश को आने वाले संघर्ष के लिए तैयार करना है। उन्होंने सलाह दी कि जन-संगठन में अपनी सारी शक्ति लगाओ। इससे ही राष्ट्रीय प्रेम को और आगे बढ़ाया जा सकता है।

इन तर्कों के जरिए गांधी जी ने अन्त में न केवल स्वराज पार्टी को कांग्रेस का अभिन्न अंग मनवा लिया बल्कि उसे ही राजनीतिक सक्रियता का केन्द्र बना दिया। साथ ही उन्होंने स्वराजियों के लिए खादी अस्पृश्यता-निवारण और हिन्दी-प्रचार आदि कार्यों में हाथ बटाना अनिवार्य बना दिया।

अगले कुछ वर्षों में गांधी जी और यथास्थिति के हामी उनके अनुयायियों ने रचनात्मक कार्यक्रम पर ध्यान केन्द्रित किया। गांधी जी ने अखिल भारतीय खादी संघ की स्थापना की। रचनात्मक कार्यक्रम के प्रचार के लिए उन्होंने सारे देश का दौरा किया।

इस दौरे में उन्होंने एक खास तरीका अपनाया। इसमें जनता जागृत तो की गयी लेकिन साथ ही उसे जगी साम्राज्य-विरोधी राजनीतिक संघर्ष के मार्ग पर जाने से रोका गया।

इस शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि गांधी जी राजनीतिक सवालों पर शायद ही कभी बोलते थे। १९२१-२२ के उनके भाषणों को देखिए जिनमें पंजाब के अत्याचारों रौलेट बिल और खिलाफत की बातें भरी होती थीं। सभी का लक्ष्य अंग्रेजी सरकार थी। और १९२४-२८ के उनके भाषणों को लीजिए जिनमें सामाजिक और आध्यात्मिक प्रश्न ही मुख्य थे। वह जनता को उस राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था के विरुद्ध नहीं उभार रहे थे जिसमें वह रह रही थी। उनका लक्ष्य सामाजिक बुराइयों का विरोध और आध्यात्मिक मूल्य मान्यताओं को ऊपर उठाना था।

दूसरे, जनता को साम्राज्यवाद जमींदारी प्रथा तथा उत्पीड़न और शोषण के अन्य रूपों के खिलाफ न उभारते हुए भी गांधी जी ने जनता की दुरवस्था देश में फैली विपन्नता और लोगों की दुर्दशा को दूर करने की बातें कीं। जनता का कोई अंग ऐसा न था जिसकी

समस्याओं का उन्होंने अध्ययन न किया जिसकी दुरावस्था का पर्दाफाश न किया और जिसे दिलासा देने की उन्होंने श्रोताओं से अपील न की। यही कारण है कि वह दरिद्र और पददलित आम जनता के विभिन्न अंगों को अपनी ओर आकर्षित कर सके।

उदाहरण के लिए देवदासियों से उन्होंने सवाल किया — मान लो कि हम तुम्हें यहां से ले जायें तुम्हें अच्छी तरह भोजन वस्त्र और शिक्षा दें और स्वस्थ परिवेश में रखें तो क्या तुम इस कलंकमय जीवन को त्याग कर मेरे साथ आना स्वीकार करोगी? उत्तर मिला "अवश्य करेंगी।

इसी तरह बंगलौर के करदाताओं से जब नगर-व्यवस्था की समस्याओं के सम्बंध में उनकी सम्मति पूछी तो गांधी जी ने कहा

> मुझे खुशी है कि आपने अपने नगर में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा लागू की है। आपकी चौड़ी सड़कों रोशनी के शानदार प्रबंध और सुन्दर उद्यानों पर मैं आपको बधाई देता हूं। लेकिन आपके मानपत्र से यहां यह ज्ञात होता है कि यहां के मध्यम और ऊपरी वर्ग सुखी होंगे यहां यह पता नहीं चलता कि आपके नगर में कोई गरीब वर्ग भी है और अगर है तो उसे स्वच्छ-स्वस्थ रखने के लिए आप क्या करते हैं? क्या आप उनके दुख-कष्टों में हाथ बंटाते हैं? क्या आप मेहतरों और भंगियों की जीवनावस्थाओं के बारे में भी सोचते हैं? क्या आपने नन्हे-मुन्नों बूढ़ों अपाहिजों और गरीबों के लिए सस्ते दूध का इन्तजाम किया है? क्या आपको यकीन है कि नगर के दूकानदार खाने-पीने के जो सामान बेचते हैं वे शुद्ध और बिना मिलावट के हैं?

तीसरे आम मेहनतकश जनता के नाम पर और उनकी समझ में आने लायक भाषा में बोलते हुए भी गांधी जी उन तमाम चीजों के कट्टर विरोधी थे जिनसे आम जनता मौजूदा सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ गोलबन्द होती। उन्होंने सकलतवाला से जो १९२७ में भारत आये थे और गांधी जी से मिले थे एक मार्के की बात कही थी। उन्होंने

स्वीकार किया कि कामरेड सकलतवाला में सच्ची निष्ठा है। गरीबों के प्रति उनकी आवेगपूर्ण भावनाओं के बारे में कोई रत्ती भर भी संदेह नहीं कर सकता लेकिन वह तथ्यों का अध्ययन करना नहीं जानते। वह भारत और भारत के हालात को नजरअन्दाज करते हैं।"

यह "तथ्य" और "हालात" क्या थे जिन्हें कॉ. सकलतवाला ने नजरअन्दाज किया था?

"मैं पूंजी को श्रम का शत्रु नहीं मानता। पूंजी और श्रम के सामंजस्य को मैं पूर्णतया सम्भव समझता हूं। दक्षिण अफ्रीका चम्पारन या अहमदाबाद में मैंने श्रमिकों का जो संगठन किया उसके पीछे पूंजीपतियों के विरुद्ध वैर की भावना नहीं थी। मेरा आदर्श समान वितरण है, लेकिन जहां तक मैं देख पाता हूं यह आदर्श चरितार्थ नहीं होने का। अतः मैं समानतापूर्ण वितरण के लिए प्रयास करता हूं। यह मैं खादी के जरिए उपलब्ध करूंगा। और चूंकि इस उपलब्धि से ब्रिटिश शोषण केन्द्र ही विषाणुमुक्त हो जायगा इसलिए इसका उद्देश्य ब्रिटेन के साथ सम्बंध का विशुद्धीकरण करना है। अतः इस अर्थ में खादी हमें स्वराज की ओर ले जाता है।

दूसरे शब्दों में खादी का कार्यक्रम श्रम और पूंजी के सामंजस्य की स्थापना और ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध के विशुद्धीकरण का कार्यक्रम था।

चौथे रचनात्मक कार्यक्रम क्रियाशीलता का कार्यक्रम था। वह इस अर्थ में क्रियाशीलता का कार्यक्रम था कि इसे माननेवालों के लिए इस पर अमल करना आवश्यक था। गांधी जी की एक बड़ी महानता यह थी कि वह उन सभी लोगों के लिए कोई-न-कोई काम ढूंढ निकालते थे जो उनके पास जाते थे। मजदूर हो किसान हो या किसी अन्य पेशे का आदमी हो सबको गांधी जी कुछ-न-कुछ काम सौंप देते थे जिससे वह व्यस्त रहे। इस तरह व्यस्तता प्रदान कर वह आपके हृदय में यह उत्साहपूर्ण भावना भर देते थे कि आप अपने देश के आखिरकार आर्थिक और राजनीतिक पुनरोत्थान के लिए कुछ कर रहे हैं। चाहे ग्रामोद्योग हिन्दी

अछूतोद्धार और आम सामाजिक सुधार के अपने लक्ष्य के जरिए गांधी जी ने यह कार्य सम्पन्न किया।

इन सभी सवालों को लेकर गांधी जी लोगों को क्रियाशील बनाते थे और उनमें यह भावना भरते थे कि वह सब कुछ स्वराज की लड़ाई की आवश्यक तैयारी के रूप में कर रहे हैं। रचनात्मक कार्यक्रम के प्रत्येक अंग के पीछे साम्राज्यवाद से लड़ने का संदेश निहित होता था। इसीके जरिए गांधी जी अपने नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन के लिए हजारों की संख्या में धुन के पक्के कार्यकर्त्ता तैयार कर सके। इन कार्यकर्त्ताओं में सेवा और त्याग की अदम्य भावना थी लेकिन साथ ही वे उस इनकलाबी जोश से अछूते थे जो उस वक्त के अस्तित्व को खतरे में डाल सकता था जिसके कि गांधी जी प्रतिनिधि थे।

पांचवें गांधी जी के उन दिनों के कार्य की सबसे असामान्य विशेषता यह थी कि उन्होंने प्रकटतः अराजनीतिक रचनात्मक कार्यक्रम का स्वराजियों के खुले राजनीतिक क्रिया-कलाप के साथ पूर्ण सामंजस्य स्थापित किया। स्वराजियों को यह सन्तोष था कि वे ही "असल राजनीतिक कार्य कर रहे हैं" यानी वे ही सभी हथियारों और साधनों से सरकार का पर्दाफाश करने और उससे लड़ने का काम कर रहे हैं। दूसरी ओर, रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं को भी यह सन्तोष था कि वे ही देश को आने वाले साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष के लिए तैयार कर रहे हैं। दोनों को इस तरह सन्तोष प्रदान कर गांधी जी ने कांग्रेस के स्वराजी एवं रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं की बागडोर अपने हाथ में रखी और इस तरह कांग्रेस के नेताओं और आम कार्यकर्त्ताओं को अपने नेतृत्व में एकताबद्ध किया।

स्वराजियों को आशीर्वाद देते हुए गांधी जी ने उनके लिए वह पथ निर्धारित कर दिया जिस पर विधान सभाओं के अन्दर उन्हें चलना था। वह पथ था "कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को बल पहुंचाने की कोशिश करना।

गांधी जी कहते थे कि मैं तो स्वराजी नहीं हूं रचनात्मक कार्य कर्त्ता हूं। लेकिन वह स्वराजियों के सारे कामों में गहरी दिलचस्पी लेते

थे। केन्द्रीय विधान सभा में स्वराजियों और उनके मित्रों ने जो कार्य नीति अपनायी थी—यानी राष्ट्रीय मांग सम्बंधी प्रसिद्ध प्रस्ताव पेश करने और उस प्रस्ताव के अस्वीकृत किये जाने पर सभा के कार्य में अड़ंगा लगाने और सभा-भवन का परित्याग करने की कार्यनीति—उसे गांधी जी का आशीर्वाद प्राप्त था। ब्रिटिश शासकों के साथ स्वराजी समझौता वार्ता आरम्भ करने के लिए जो कोशिशें करते थे उन सबको गांधीजी का पूर्ण समर्थन प्राप्त था। लेकिन गांधी जी उस वक्त तक अपने को पृष्ठभूमि में रखते जब तक कि समझौता वार्ता ऐसी मंजिल पर नहीं पहुंच जाती जिसमें उनके ख्याल से सफलता की थोड़ी-बहुत संभावना नजर आने लगती थी।

स्वराजी नेता देशबंधु दास और ब्रिटेन के भारत मंत्री लार्ड बर्केनहेड में हुई समझौता-वार्ता के सम्बंध में गांधी जी ने जो रुख गहे थे वे उल्लेखनीय हैं। १ मई १९२५ को कलकत्ता में भाषण करते हुए उन्होंने कहा था कि इंगलैंड के "अद्वितीय कूटनीतिज्ञों के साथ दोस्त सम्बंध स्थापित करने के बदले में तो भारत की आन्तरिक शक्ति को विकसित करने के लिए रचनात्मक कार्यक्रम पर ध्यान केन्द्रित करना बेहतर समझता हूं। लेकिन इस भाषण के कुछ ही दिनों बाद यानी २ जून को उन्होंने खुद अंग्रेजों से खुली अपील की कि वे देशबंधु दास क प्रस्तावों को स्वीकार कर लें।

संक्षेप में असहयोग आंदोलन के बाद के काल में गांधी जी ने जो कौशल अपनाया वह यह था कि एक ओर तो स्वराजिया को स्वराज्य की मांग करने और ब्रिटिश सरकार के साथ समझौते की बातचीत करने के हर अवसर का लाभ उठाने दें दूसरी ओर, हजारों-हजार निस्वार्थ रचनात्मक कार्यकर्ताओं की मेहनत का उपयोग करके देश भर में संगठनों का जाल बिछा दें और समझौते की बातचीत के पूरी तरह असफल हो जाने के बाद अहिंसक संघर्ष के एक नये दौर के लिए देश को तैयार करें।

पूंजीवादी वर्ग की राजनीतिक आवश्यकताओं के लिए यह कौशल अत्यन्त उपयुक्त था। साथ ही वह एक ऐसी नीति थी जिसे गांधी जी ही

सफलतापूर्वक कार्यान्वित कर सकते थे क्योंकि वही रचनात्मक कार्यक्रम के नेता थे और वही समझौता-वार्ता के मामले में स्वराजियों के भी सर्वमान्य नेता थे। पूंजीवादी वर्ग की आवश्यकताओं के साथ इस अनुकूलता ने ही गांधी जी को न केवल रचनात्मक कार्यकर्ताओं का बल्कि स्वराजियों का भी निर्विवाद नेता बना दिया। इसने न केवल कांग्रेसजनों का बल्कि लिबरलों और अन्य पूंजीवादी पार्टियों और समूहों का भी उन्हें एकछत्र नेता बना दिया।

५ पूर्ण स्वराज्य

इधर जब कांग्रेस गांधी जी की प्रेरणा से कौंसिल प्रवेश और रचनात्मक कार्यक्रम चला रही थी तो दूसरी ओर राष्ट्रीय रंगमंच पर दो नयी शक्तियों का उदय हो रहा था। एक था सम्प्रदायवाद—हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदायवाद और दूसरा था उग्रपंथी साम्राज्यवाद-विरोध। दोनों ही शक्तियां सविनय अवज्ञा आंदोलन के बंद कर दिये जाने और उसके कारण पैदा हुई कुंठा भावना और राजनीतिक निराशा उलझन के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई थी। दोनों ने ही अपने-अपने ढंग से गांधी जी और उनके सहकर्मियों द्वारा संचालित स्वराजी और रचनात्मक कार्यक्रम में बाधा डालना आरम्भ किया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के स्थगन पर कांग्रेस के अन्दर दो मत हो गये थे। अब यही बात स्वराजियों के शिविर में भी हुई। स्वराजियों के एक हिस्से ने विधान परिषद को अंग्रेज सरकार का पर्दाफाश करने तथा प्रचार के लिए इस्तेमाल करने का पहला विचार त्याग दिया और सकारात्मक सहयोग की उत्तरदायित्व नीति अपनायी। इस नीति के आधार पर उन्होंने अपना अलग दल बना लिया। कार्यनीति को लेकर आरम्भ होने वाला यह मतभेद शीघ्र ही अन्य मतभेदों में परिणत हो गया जिसका स्वरूप साम्प्रदायिक था।

१९२१ के बाद से असहयोगी रूप या उस सम्प्रदाय की मांगें बुलन्द करने लगे। हिन्दू और मुसलमानों के साम्प्रदायिक संगठन फिर सक्रिय होने लगे और अपने अपने सम्प्रदाय की ओर से लम्बी-चौड़ी माँग

पेश करने लगे। सबसे खतरनाक बात यह हुई कि कुछ सुविख्यात कांग्रेस-नेता भी इन मांगों के हामी बन गये।

सम्प्रदायवाद ने अपने को केवल ऊपरी स्तर पर दावे और उनसे पेश करने तक ही सीमित नहीं रखा वह देश के समूचे जन-जीवन पर छा गया। गोहत्या मस्जिदों के सामने बाजा शुद्धि और तबलीग के सवालों ने विकराल रूप धारण कर लिया। कई जगह तो इसके कारण सम्प्रदायों में झगड़े और यहां तक कि खून-खराबे भी हुए। खिलाफत आंदोलन के दिनों के साम्प्रदायिक एकता के वातावरण का स्थान तीव्र तनाव ने ले लिया।

गांधी जी के मन को इससे गहरी ठेस लगी। ईश्वर-अल्लाह का नाम लेकर शैतान का काम करने वाले लोगों के अमानवी कृत्यों से उन्हें अपार पीड़ा हुई। धर्म के नाम पर किये गये रोमहर्षक अत्याचारों का विरोध उन्होंने अपने अनशन व्रत से किया।

बेशक इसका अस्थायी असर हुआ। विभिन्न सम्प्रदायों के नेता आपस में मिले और गांधी जी से यह वायदा किया कि वे साम्प्रदायिक शान्ति कायम रखने में कोई कसर उठा नहीं रखेंगे। पर देश के जन-जीवन पर इसका कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा। उल्टे गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस स्वराज्य के सफल संग्राम की दिशा में ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गयी त्यों-त्यों साम्प्रदायिक परिस्थिति बिगड़ती गयी। हालत यहां तक पहुंच गयी कि आगे आनेवाले सभी साम्राज्य-विरोधी समरों में साम्प्रदायिक स्थिति गांधी जी के राह का सबसे बड़ा रोड़ा बन गयी। इसकी चरम परिणति उस विकृत स्वतंत्रता में हुई जिसने गांधी जी के समस्त आदर्शों को चकनाचूर कर दिया और अन्त में गांधी जी स्वयं एक हिन्दू सम्प्रदायवादी हत्यारे के हाथों मारे गये।

सम्प्रदायवादी शक्तियों के उदय पर गांधी जी ने धर्म के नाम पर किये जाने वाले अत्याचारों के खिलाफ सिर्फ मानवोचित घृणा प्रकट करके ही सन्तोष नहीं किया। एक ऐसा राजनीतिज्ञ होने के नाते जिसका सर्वोपरि उद्देश्य विभिन्न वर्गों सम्प्रदायों और जन समूहों को स्वराज्य संग्राम के लिए ऐक्यबद्ध करना था गांधी जी ने फौरन अनुभव

किया कि साम्प्रदायिक समस्या केवल मानव सम्बंधों की समस्या नहीं है, बल्कि एक व्यावहारिक राजनीतिक समस्या है। यह समस्या उनके लिए ब्रिटिश शासकों से छीनी जानेवाली सत्ता के बंटवारे में भारतीय जनता के विभिन्न सम्प्रदायों के दावों में सामंजस्य स्थापित करने की समस्या थी।

स्वराज्य उस वक्त तक हासिल नहीं किया जा सकता था जब तक कि उसके रूप और तत्व के विषय में जनता में किसी हद तक सहमति न हो जब तक जनता के विभिन्न हिस्सों को यह न समझा दिया जाय कि स्वराज्य होने पर नई वैधानिक-राजनीतिक व्यवस्था क्या होगी? यह और भी महत्वपूर्ण इसलिए था कि ब्रिटिश शासक स्वराज्य की मांग का कोई उचित उत्तर न दे पाने के कारण विभिन्न सम्प्रदायों की फूट और मतैक्य के अभाव को अपनी सब से बड़ी दलील बनाये हुए थे।

तत्कालीन भारत सचिव लॉर्ड बर्केनहेड ने भारतीय राजनीतिज्ञों को चुनौती दी कि विधान का सर्व-सम्मत मसविदा तैयार करें। उन्हें पक्का यकीन था कि हिन्दू और मुसलमानों के झगड़े और ईसाइयों अछूतों आदि के झगड़े ही कायम द्वारा पेश की जानेवाली राष्ट्रीय जनवादी मांग का खण्डन कर देने के लिए काफी होंगे यूरोपियनों राजरजवाड़े और जमींदारों आदि के हितों की तो बात ही दूर रही।

मुख्य राष्ट्रीय राजनीतिक संगठन होने के नाते इस चुनौती को स्वीकार करना कांग्रेस के लिए जीवन-मरण का प्रश्न बन गया और उसने यह चुनौती कबूल की। उसने एक सर्वदली समिति आयोजित की जिसके अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू और मंत्री जवाहरलाल नेहरू थे। नेहरू रिपोर्ट और संविधान के मसविदे ने सभी सम्प्रदायों के राजनीतिज्ञों के बड़े हिस्सों को समवेत किया यद्यपि पृथक निर्वाचन-क्षेत्र सुरक्षित सीटों, केन्द्र और प्रान्तों के बीच सत्ता-विभाजन आदि प्रश्नों को लेकर अब भी उनमें काफी मतभेद थे। नेहरू रिपोर्ट पर कांग्रेसी उदारदली और अन्य उच्चतम राजनीतिज्ञों की एकता गांधी जी के आशीर्वाद से प्राप्त स्वराजी नेताओं की बहुत बड़ी सफलता थी। मगर एकता में अन्तर्निहित रूप को उनकी साम्राज्य-विरोध की शक्ति ने चुनौती दी।

सविनय अवज्ञा आंदोलन के स्थगित किये जाने से कांग्रेस के कार्यकर्ताओं और स्वयंसेवकों का एक बहुत बड़ा हिस्सा क्षुब्ध हो उठा था। लाखों कांग्रेस-जनों के मन में यह भावना घर कर गयी थी कि जब उन्होंने दुश्मन को चपेट में ले लिया था ठीक उसी समय उनके नेताओं ने उनके साथ गद्दारी की। गांधी जी जिस तरह से आंदोलन को चलाते थे उसमें कहीं न कहीं कोई बड़ी गलती जरूर थी यह वे समझते थे। लेकिन चितरंजन दास मोतीलाल नेहरू विट्ठल भाई पटेल आदि नेता जो नई राजनीति पेश कर रहे थे उससे भी वे असहमत थे। अतः इस अर्थ में कि वे कौंसिल प्रवेश के विरुद्ध थे वे यथास्थितिवादियों की तरफ थे। लेकिन यथास्थितिवादियों की राजनीति (यह फिलहाल रचनात्मक कार्यक्रम मात्र थी) उन्हें पसन्द न थी। वे दोनों से ही असन्तुष्ट थे और बेबसी महसूस करते थे। कहीं कुछ गलती जरूर है यह वे समझते थे लेकिन गलती कहां है, इसे वे पकड़ नहीं पा रहे थे। वे चाहते थे कि परिवर्तन हो लेकिन क्या परिवर्तन हो, यह नहीं सोच पाते थे।

भ्रमजाल से छूटे इन कांग्रेस-जनों पर विदेशों से आये नये-नये विचार असर डालने लगे। आयरलैंड और मिस्र के जनी साम्राज्य विरोध तुर्की के उग्र सामाजिक और सांस्कृतिक सुधार और सोवियत संघ के समाजवाद की हवा पहुंची। इन विचारों के प्रवेश के साथ समाज के नये-नये वर्गों और अंगों ने सक्रिय सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया।

इस सिलसिले में तीसरे दशक के अन्दर एक शक्ति के रूप में मजदूर वर्ग का उदय विशेष महत्व रखता है। असहयोग आंदोलन से पहले और उसके दौरान हड़तालों की लहर देश के औद्योगिक और राजनीतिक जीवन में आम चीज हो गयी थी। अब इस लहर ने ट्रेड यूनियनों के रूप में धीरे-धीरे आकृति ग्रहण करना आरम्भ किया। ट्रेड यूनियनों की बढ़ती हुई संख्या के आधार पर अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का जन्म हुआ था। सरकार इसके जरिए ही अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सम्मेलनों के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव करती थी। इनमें से अनेक यूनियनों के नेता राष्ट्रवादी युवक थे जो मजदूर

सविनय अवज्ञा आंदोलन के स्थगित किये जाने से कांग्रेस के कार्यकर्ताओं और स्वयंसेवकों का एक बहुत बड़ा हिस्सा क्षुब्ध हो उठा था। लाखों कांग्रेस-जनों के मन में यह भावना घर कर गयी थी कि जब उन्होंने दुश्मन को चपेट में ले लिया था ठीक उसी समय उनके नेताओं ने उनके साथ गद्दारी की। गांधी जी जिस तरह से आंदोलन को चलाते थे उसमें कहीं न कहीं कोई बड़ी गलती जरूर थी यह वे समझते थे। लेकिन चित्तरंजन दास मोतीलाल नेहरू, विट्ठल भी पटेल आदि नेता जो नई राजनीति पेश कर रहे थे उससे भी वे असहमत थे। अतः इस अर्थ में कि वे कौंसिल प्रवेश के विरुद्ध थे व यथास्थितिवादियों की तरह थे। लेकिन यथास्थितिवादियों की राजनीति (यह फिलहाल रचनात्मक कार्यक्रम मात्र थी) उन्हें पसन्द न थी। वे दोनों से ही असन्तुष्ट थे और बेचैनी महसूस करते थे। कहीं कुछ गलती जरूर है यह वे समझते थे लेकिन गलती कहां है इसे वे पकड़ नहीं पा रहे थे। वे चाहते थे कि परिवर्तन हो लेकिन क्या परिवर्तन हो, यह नहीं सोच पाते थे।

क्रमशः ऐसे छूटे इन कांग्रेस-जनों पर विदेशों से आये नये-नये विचार असर डालने लगे। आयरलैंड और मिस्र के संघी साम्राज्य विरोध तुर्की के उग्र सामाजिक और सांस्कृतिक सुधार और सोवियत संघ के समाजवाद की हवा पहुंची। इन विचारों के प्रवेश के साथ समाज के नये-नये वर्गों और अंशों ने सक्रिय सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया।

इस सिलसिले में तीसरे दशक के अन्दर एक शक्ति के रूप में मजदूर वर्ग का उदय विशेष महत्व रखता है। असहयोग आंदोलन से पहले और उसके दौरान हड़तालों की लहर देश के औद्योगिक और राजनीतिक जीवन में आम चीज हो गयी थी। अब इस लहर ने ट्रेड-यूनियनों के रूप में धीरे-धीरे आकृति ग्रहण करना आरम्भ किया। ट्रेड यूनियनों की बढ़ती हुई संख्या के आधार पर अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का जन्म हुआ था। सरकार इसके जरिए ही अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सम्मेलनों के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव करती थी। इनमें से अनेक यूनियनों के नेता राष्ट्रवादी युवक थे जो मजदूर

मद्रास से लेकर १९२९ के लाहौर अधिवेशन तक (जिसमें कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य को तात्कालिक लक्ष्य घोषित किया) जो दो वर्ष गुजरे, उसमें समूचे देश के अन्दर गरमागरम बहस छिड़ी रही। महात्मा गांधी और मोतीलाल नेहरू पूरी ताकत लगाकर जवाहरलाल नेहरू सुभाष बोस और श्रीनिवास अय्यंगर को यह समझाने की कोशिश करते रहे कि औपनिवेशिक पद और पूर्ण स्वराज्य में केवल नाम का अन्तर है। कलकत्ता अधिवेशन में मोतीलाल नेहरू ने कहा कि "हम पूर्ण स्वतंत्रता और औपनिवेशिक पद जैसे अंग्रेजों से उधार लिये शब्दों के टंटे में न फंसें और स्वराज्य या आजादी के लिए लड़ें।

लेकिन कांग्रेस क इन दो उच्चतम नेताओं के खुले विरोध से बहस ठंडी नहीं हुई, बल्कि ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये मद्रास कांग्रेस की घोषणा के पक्ष में आंदोलन अधिकाधिक जोरदार होता गया। जवाहरलाल नेहरू सुभाष बोस श्रीनिवास अय्यंगर और सत्यमूर्ति आदि द्वारा स्थापित इंडीपेन्डेन्स लीग ऑफ इंडिया लीग के झंडे के नीचे हजारों की संख्या मे कांग्रेस-जन गोलबन्द होने लगे। ऐसा लगा कि कांग्रेस का एक जवाबी नेतृत्व खड़ा हो जायेगा।

गांधी जी ने परिस्थिति का अन्दाज लगा लिया। उन्होंने औप निवेशिक पद तथा पूर्ण स्वतंत्रता के अनुयायियो क बीच समझौता कराने की कोशिश की। समझौता यह था कि पूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य को मानते हुए कांग्रेस इस शर्त के साथ औपनिवेशिक पद की मांग स्वीकार कर लेगी कि यह मांग एक साल के अन्दर पूरी हो। अगर एक साल के अन्दर यह मांग न मानी गयी तो खुद गांधी जी और मोतीलाल नेहरू आदि कांग्रेस से पूर्ण स्वतंत्रता का लक्ष्य मनवायेंगे और उसकी प्राप्ति के लिए अहिंसक असहयोग आंदोलन को संगठित करेंगे।

यह समझौता एक प्रस्ताव के रूप म कलकत्ता अधिवेशन (१९२८) के सामने पेश होनेवाला था। जवाहरलाल और सुभाष बोस इस समझौते पर राजी हो गये थे। लेकिन खुद अपने अनुयायियों के दबाव के कारण उन्हें अन्त म समझौते के इस प्रस्ताव मे एक संशोधन पेश करना पड़ा। पर गांधी जी के चार स प्रतिनिधियो के बहुमत ने समझौता प्रस्ताव

सभी समूह ऐक्यबद्ध हो गये। यह सवाल था हमारे देश के राष्ट्रीय लक्ष्य का सवाल।

नेहरू रिपोर्ट के झगड़े के बीच संगठित होने वाले राजनीतिज्ञों के विरुद्ध उग्रपंथी साम्राज्य-विरोधी युवक पूर्ण स्वतन्त्रता का झंडा लेकर सामने आये। गांधी जी मोतीलाल नेहरू नरम-दली लोगों और अन्यों की एकता का आधार औपनिवेशिक पद की यानी ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर उस पद की मांग थी जो कनाडा या आस्ट्रेलिया को प्राप्त था। दूसरी ओर, उग्रपंथियों ने मांग पेश की कि औपनिवेशिक पद का विचार एकदम ठुकरा देना चाहिए। उन्होंने कहा कि ब्रिटिश साम्राज्य से पूरी तरह नाता तोड़ लेना ही आजादी का लक्षण है।

इसके कांग्रेस के बाहर के उग्रपंथी ही नहीं समवेत हुए, बल्कि कांग्रेस के अन्दर के उग्र विचार रखने वाले अनगिनत लोग भी इसकी ओर आकृष्ट हुए। और उनमें केवल साधारण कांग्रेस-जन ही नहीं थे बल्कि कांग्रेस के तत्कालीन महामंत्री जवाहरलाल नेहरू, बंगाल कांग्रेस के नेता सुभाषचन्द्र बोस कांग्रेस के गौहाटी अधिवेशन के अध्यक्ष श्रीनिवास अय्यंगर और सत्यमूर्ति आदि भी थे। पूर्ण स्वराज्य के नारे ने आम कांग्रेस-जनों पर प्रबल प्रभाव डाला यहां तक कि १९२७ में कांग्रेस ने अपने मद्रास अधिवेशन में इसे ही अपना लक्ष्य घोषित किया।

गांधी जी इसके घोर विरोधी थे। जैसा कि प्रथम विश्व युद्ध के समय उन्होंने स्पष्ट कर दिया था वह ब्रिटिश साम्राज्य के मित्र थे। साम्राज्य से उनका झगड़ा केवल इस बात पर था कि भारतीयों को साम्राज्य से सम्पर्क के लाभों का उपभोग करने नहीं दिया जाता था। अब उनकी मांग सिर्फ यह थी कि भारतीयों को कनाडा आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के समान अधिकार दिये जायें। मद्रास अधिवेशन के निर्णय के बारे में उन्होंने लिखा

> कांग्रेस प्रति वर्ष उन प्रस्तावों को दोहरा कर अपने को हास्यास्पद बनाती है जिनके बारे में वह जानती है कि हम उन पर अमल करने में असमर्थ हैं। हम स्कूली बच्चों के वाद विवाद क्लब के स्तर पर उतर आये हैं।

कांग्रेस के लिए घातक हो सकता है यह कहने वालों को गांधी जी ने इस प्रकार समझाया

> जवाहरलाल निस्संदेह उग्रवादी है और अपने चारों ओर की स्थिति से बहुत दूर आगे जाकर सोचते हैं। लेकिन उनमें इतना अनुशासन इतनी विनम्रता और व्यावहारिकता है कि वह इस हद तक आगे नहीं बढ़ेंगे कि मामला बिल्कुल ही बिगड़ जाय।

उन्होंने देश के तरुणों को भाप की मिसाल दी। उन्होंने कहा कि जिस तरह भाप किसी मजबूत डब्बे में गिरफ्तार होकर प्रचंड शक्ति उत्पन्न करती है उसी तरह देश के नौजवानों को भी अपनी अदम्य शक्ति को बन्द और वशीभूत रखने और उसे आवश्यक मात्राओं में ही मुक्त करने की पाबन्दी कबूल करनी चाहिए।

इस तरह जवाहरलाल को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाकर गांधी जी पुराने स्वराजियों और अपरिवर्तनवादियों को एक साथ ले आए। यह उनका पहला पग भी था जिसे उन्होंने देश भर में फैले साम्राज्य-विरोधी ज्वार को बन्द और वशीभूत करने और उसे आवश्यक मात्रा में ही मुक्त करने की दिशा में उठाया। उन्होंने वामपंथी आन्दोलन अर्थात् आधुनिक समाजवाद के आन्दोलन को स्वतंत्र वर्ग-आधारों पर विकसित न होने देकर, उसे अपने (पूंजीवादी) नेतृत्व के अन्दर ले आने का कदम उठाया था।

जवाहरलाल नेहरू के अध्यक्ष चुने जाने और लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता के लक्ष्य की घोषणा को पूर्ण-स्वाधीनता के समर्थकों ने अपनी विजय माना। पर इस विजय के पीछे हम देख सकते हैं कि यह औपनिवेशिक पद और पूर्ण स्वाधीनता के हामियों का वास्तव में एक समझौता था। इसके लिए कलकत्ता में निष्फल प्रयास किया जा चुका था। श्री तेन्दुलकर ने दो महत्वपूर्ण दस्तावेजों का हवाला दिया है जिससे हम इस समझौते के आधार को साफ देख सकते हैं।

लाहौर अधिवेशन के कुछ ही हफ्ते पहले गांधी जी ने एक लेख में कहा था

पास कर दिया। १३५ आदमियों ने एक साल तक ठहरने के पक्ष में और ९७१ ने इसके खिलाफ वोट दिया। इससे अधिक प्रतिनिधियों का खिलाफ वोट देना प्रकट करता था कि औपनिवेशिक पद और समझौता वार्ता की राजनीति से लोग कितने अधीर हो उठे थे।

लेकिन ब्रिटिश सरकार भला गांधी जी और मोतीलाल नेहरू की मांग क्यों मानने लगी। औपनिवेशिक पद देना तो दूर रहा अंग्रेज प्रान्तीय स्वायत्तता से भी आगे जाने को तैयार न थे और प्रान्तीय स्वायत्तता के साथ भी उन्होंने यूरोपियन जमींदार आदि अल्पसंख्यक हितों के नाम पर तथा मुसलमान और अन्य दूसरे अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के लिए तरह-तरह के "संरक्षणों" की शर्त लगा रखी थी। सप्रू आदि नरमदली नेताओं के सहयोग से गांधी जी और मोतीलाल नेहरू आदि ने आखिरी समय तक समझौते की कोशिश जारी रखी। ऐन लाहौर अधिवेशन (१९२९) के शुरू होने तक जब कि एक साल की अवधि पूरी होने को थी कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार में समझौते का कोई न कोई आधार निकालने की कोशिश की गयी।

जैसी कि गांधी जी की विशेषता थी अंग्रेजों के साथ समझौते की बातचीत शुरू करने की कोशिश करते हुए भी दूसरी ओर वह कलकत्ता कांग्रेस द्वारा परिकल्पित दूसरे रास्ते के लिए तैयारी कर रहे थे। उन्होंने महसूस किया कि यदि दूसरे रास्ते पर चलना पड़ा तो कुछ ऐसा कदम उठाना पड़ेगा जिससे कि कांग्रेस के अंदर का उग्रपंथी साम्राज्यवाद विरोधी हिस्सा भी उनके नेतृत्व में ऐक्यबद्ध हो जाये। इसी कदम को सामने रखकर लाहौर अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए उन्होंने जवाहर लाल नेहरू का नाम प्रस्तावित किया।

उनके कुछ अनुयायियों ने कहा कि चूंकि इस अधिवेशन में देशव्यापी प्रत्यक्ष कारवाई का आह्वान किया जायेगा इसलिए गांधी जी को स्वयं इसकी अध्यक्षता करनी चाहिए। दूसरे लोगों ने बारदोली के सफल किसान संघर्ष के नेता वल्लभभाई पटेल का नाम पेश किया। पर गांधी जी ने इन दोनों प्रस्तावों को नामंजूर कर दिया।

बूढ़ों के हाथ से नौजवानों के हाथ में कांग्रेस की बागडोर थमाना

कांग्रेस के लिए घातक हो सकता है यह कहने वालों को गांधी जी ने इस प्रकार समझाया

> जवाहरलाल निस्संदेह उग्रवादी है और अपने चारों ओर की स्थिति से बहुत दूर आगे जाकर सोचते हैं, लेकिन उनमें इतना अनुशासन इतनी विनम्रता और व्यावहारिकता है कि वह इस हद तक आगे नहीं बढ़ेंगे कि मामला बिल्कुल ही बिगड़ जाय।

उन्होंने देश के तरुणों को भाप की मिसाल दी। उन्होंने कहा कि "जिस तरह भाप किसी मजबूत डब्बे में गिरफ्तार होकर प्रचंड शक्ति उत्पन्न करती है उसी तरह देश के नौजवानों को भी अपनी असाध्य शक्ति को बन्द और वशीभूत रखने और उसे आवश्यक मात्राओं में ही मुक्त करने की पाबन्दी कबूल करनी चाहिए।

इस तरह जवाहरलाल को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाकर गांधी जी पुराने स्थितिवादियों और अपरिवर्तनवादियों को एक साथ ले आये। यह उनका पहला पग भी था जिसे उन्होंने देश भर में फैले साम्राज्य-विरोधी ज्वार को बन्द और वशीभूत करने और उसे आवश्यक मात्रा में ही मुक्त करने की दिशा में उठाया। उन्होंने वामपंथी आन्दोलन अर्थात् आधुनिक समाजवाद के आन्दोलन को स्वतंत्र वर्ग-आधारों पर विकसित न होने देकर, उसे अपने (पूंजीवादी) नेतृत्व के अन्दर ले आने का कदम उठाया था।

जवाहरलाल नेहरू के अध्यक्ष चुने जाने और लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता के लक्ष्य की घोषणा को पूर्ण-स्वाधीनता के समर्थकों ने अपनी विजय माना। पर इस विजय के पीछे हम देख सकते हैं कि यह औपनिवेशिक पद और पूर्ण स्वाधीनता के हामियों का वास्तव में एक समझौता था। इसके लिए कलकत्ता में निष्फल प्रयास किया जा चुका था। श्री तेन्दुलकर ने दो महत्वपूर्ण दस्तावेजों का हवाला दिया है जिनसे हम इस समझौते के आधार को साफ देख सकते हैं।

लाहौर अधिवेशन के कुछ ही हफ्ते पहले गांधी जी ने एक लेख में कहा था

> अगर मुझे व्यावहारिक रूप में वास्तविक औपनिवेशिक पद मिल जाए अगर आज वास्तविक हृदय परिवर्तन हो ब्रिटिश जनता में भारत को स्वतंत्र और आत्म-सम्मान युक्त राष्ट्र देखने की वास्तविक इच्छा हो और भारत स्थित उसके अधिकारियों में सेवा की सच्ची भावना हो तो मैं औपनिवेशिक पद संविधान के लिए ठहर सकता हूं। औपनिवेशिक पद की मेरी धारणा में इच्छा होने पर ब्रिटेन से सम्बंध त्याग की क्षमता अन्तर्निहित है।

और जवाहरलाल नेहरू ने भी लाहौर अधिवेशन के अपने अध्यक्षीय अभिभाषण में गांधी जी के इसी उद्‌गार को दुहराया। उन्होंने कहा

> स्वतंत्रता का अर्थ हमारे लिए अंग्रेजी प्रभुत्व और ब्रिटिश साम्राज्यवाद से पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति है। मुझे इस बात में तनिक भी संदेह नहीं कि आजादी हासिल कर लेने के बाद भारत विश्व सहयोग और विश्व संघ के सभी प्रयासों का स्वागत करेगा यहां तक कि अपनी स्वाधीनता का एक अंश किसी ऐसे बड़े समूह को सौंपने को भी तैयार हो जायगा जिसका वह सदस्य मात्र सदस्य हो।

दूसरे शब्दों में यह कि जहां गांधी जी स्वयं अपनी व्याख्या के साथ पूर्ण स्वतंत्रता को मानते थे वहां जवाहरलाल पूर्ण स्वतंत्रता मिल जाने पर उसे कुछ सीमाओं में डालने को सहमत थे। इस तरह मतभेद बहुत कुछ दूर हो गये। साथ ही सबने यह अनुभव किया कि राष्ट्र की मांग को—वह मांग चाहे गांधी जी की धारणा के मुताबिक हो या जवाहरलाल की धारणा के मुताबिक—अंग्रेजों से मनवाने के लिए जन-संघर्ष आवश्यक है। अतः उनके लिए कलकत्ता कांग्रेस के निर्णय की पूर्ति के लिए सहमत होना और संघर्ष की तैयारी शुरू करना आवश्यक हो गया। गांधी जी ने लाहौर कांग्रेस में घोषणा की—"हम नये युग में प्रवेश कर रहे हैं। हमारा लक्ष्य दूर का लक्ष्य नहीं बल्कि तात्कालिक लक्ष्य पूर्ण स्वतंत्रता है।

देश सचमुच एक नये युग में प्रवेश कर रहा था। जन-जागरण का एक नया ज्वार आ रहा था। १९२२ के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के स्थगन से निराश और हताश हजारों युवक और युवतियां स्वतंत्रता के अनुशासित सैनिकों के रूप में मैदान में फिर उतर पड़े। कांग्रेस कार्यसमिति ने २६ जनवरी १९३ को स्वतंत्रता दिवस मनाने का आह्वान किया। उस दिन देश के नगरों और देहातों में जन-सागर उमड़ पड़ा। विराट जलूस निकले जन सभाएं हुईं, कलकत्ता और बम्बई जैसे शहरों में लाखों लोगों ने स्वतंत्रता-शपथ ग्रहण की।

नमक कानून तोड़ने का निर्णय और गांधी जी की डांडी यात्रा को जनता ने पूर्ण-स्वतंत्रता की प्राप्ति के विराट जन-आंदोलन का श्रीगणेश माना। पहले गांधी जी ने डांडी में नमक कानून तोड़ा इसके बाद समूचे देश में नमक कानून तोड़ा जाने लगा। हजारों की तादाद में लोग इन समारोहों में एकत्र होते। गिरफ्तारियां होतीं लाठियां बरसायी जातीं गोलियां चलतीं फिर भी अपार जन-समूह कांग्रेस के झंडे के नीचे आंदोलन में हिस्सा लेता। श्री तेन्दुलकर के निम्नांकित विवरणों स जनता की मनोभावना का अन्दाजा लग सकता है

> कलकत्ता मद्रास और करांची में गोली चली और लाठियों की वर्षा तो देश में सभी जगह की गयी। जलसों और सभाओं पर रोक लगा दी गयी। जनता ने विदेशी वस्त्र और शराब की दुकानों पर बारम्बार पिकेटिंग करके दमन का जवाब दिया।

१८ अप्रैल को चटगांव शस्त्रागार पर हमला हुआ। क्रांतिकारी ज्वार पेशावर में चरम सीमा पर पहुंच गया। वहां १ अप्रैल को विराट जन-प्रदर्शन हुए। अगले दिन नव-संगठित खुदाई खिदमतगार या लाल कुर्ती दल के नेता खान अब्दुल गफ्फार खां गिरफ्तार कर लिये गये। जनता ने हजारों की संख्या में उस स्थान को घेर लिया जहां खान अब्दुल गफ्फार खां नजरबंद किये गये थे। इन प्रदर्शनकारियों को डराने के लिए बख्तरबंद गाड़ियां भेजी गयी। उन पर अंधाधुंध गोलीबारी किया गया। इसमें सैकड़ों लोग मारे गये और सैकड़ों घायल हुए। अठारहवीं रायल गढ़वाली राइफल्स की दूसरी बटालियन की दो टुकड़ियों ने जिनमें हिन्दू सिपाही थे मुस्लिम जनता की भीड़ पर गोली चलाने से इनकार कर दिया और अपने हथियार लौटा दिये।

जब गांधी जी गिरफ्तार कर लिये गये तब तो मानों जन-प्रदर्शनों का एक तूफान ही फट पड़ा।

गांधी जी की गिरफ्तारी के बाद देश भर में हड़तालों की लहर फैल गयी। बम्बई में करीब ५   कपड़ा-मजदूर मिलों से बाहर निकल आये। रेलवे-मजदूर भी प्रदर्शन में शामिल हुए। इतना बड़ा जलूस निकला कि उसे देख कर पुलिस चुपके से खिसक गयी। कपड़ा व्यापारियों ने ६ दिन की हड़ताल करने का फैसला किया। पूना में जहां गांधी जी नजरबन्द थे सरकारी उपाधियों और नौकरियों से इस्तीफे की खबरें आने लगीं।

"क्रांतिकारी उत्साह चरम बिन्दु पर पहुंच गया था। शोलापुर में जनता ने एक हफ्ते के लिए नगर पर कब्जा कर लिया और पुलिस को हटा कर अपना शासन कायम किया। अन्त में वहां मार्शल लॉ घोषित किया गया। मैमनसिंह, कलकत्ता, करांची लखनऊ, मुल्तान दिल्ली रावलपिंडी और पेशावर में भी विस्फोट हुए। सरकार फौज हवाई जहाज टैंक तोप और गोले ले आयी और उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त में इनका खुलकर

२ यद्यपि बाद में सविनय अवज्ञा की भी धमकी दी किन्तु प्रत्यक्ष कार्रवाई का दायरा सत्याग्रहियों की सीमित संख्या तक ही महदूद रखने की कोशिश की गयी। विद्यापीठ के छात्रों में भाषण करते हुए गांधी जी ने कहा

> हम संख्या-बल पर भरोसा नहीं करते बल्कि चरित्र-बल पर भरोसा करते हैं। सविनय अवज्ञा का प्रस्ताव इसलिए पेश किया गया था क्योंकि इसकी अपील पर बड़ी संख्या में लोगों के मैदान में उतरने से अधिक विश्वास मुझे इस बात का था कि थोड़े से लोग आत्म-बलिदान करेंगे।

३ आन्दोलन के दायरे को सीमित रखने के लिए ही मजदूरों, किसानों और कारीगरों मेहनतकशों की मांगों को उस सूची में शामिल नहीं किया गया जिसे गांधी जी ने स्वतंत्रता का तत्व कहा था। उदाहरण के लिए, उपरोक्त ग्यारह मांगों में एक भी मांग ऐसी नहीं थी जो मजदूर या किसान अपने मालिक जमींदार या महाजन से करते हैं। किसानों के प्रत्यक्ष हित की एकमात्र मांग मालगुजारी में ५० % कमी की मांग थी। लगान में कमी कर्ज-वसूली पर कुछ समय के लिए रोक मजदूरों और कर्मचारियों के लिए पर्याप्त मजदूरी और वेतन आदि मांगों पर विचार तक न किया गया।

यह सही है कि एक वर्ष बाद कराची अधिवेशन में कांग्रेस नेताओं ने मेहनतकश जनता की बहुत सी मांगों को मंजूर किया और इन्हें मौलिक अधिकारों सम्बंधी प्रसिद्ध प्रस्ताव में शामिल किया गया।

औद्योगिक मजदूरों के लिए जीवन निर्वाह योग्य मजदूरी काम के सीमित घंटे, स्वास्थ्यपूर्ण कार्यावस्थाएं, वृद्धावस्था बीमारी और बेरोजगारी के आर्थिक परिणामों से बचाव लगान अथवा किसानों द्वारा अदा की जाने वाली मालगुजारी में बड़ी कमी और गैर-आर्थिक जोतों के लिए आवश्यक अवधि तक लगान माफी आदि जैसी मांगें कांग्रेस कार्यक्रम में सम्मिलित कर ली गयीं। लेकिन उल्लेखनीय बात यह है कि इस प्रस्ताव को पेश करते हुए गांधी जी ने अपने भाषण में कहा

"यह प्रस्ताव उन लोगों के लिए है जो विधायक नहीं हैं जो संविधान के पेचीदा सवालों में दिलचस्पी नहीं रखते और जो देश के प्रशासन में सक्रिय भाग नहीं लेंगे। यह तो गरीब बे-जबान भारतवासियों को यह बताने के लिए है कि स्वराज या रामराज्य की मोटामोटी विशेषताएं क्या होंगी।"

दूसरे शब्दों में कराची कांग्रेस के दो उद्देश्य थे। एक उद्देश्य यह था कि कांग्रेस का नेतृत्व मेहनतकश जनता को उभार सके और उसमें यह भ्रम पैदा कर सके कि कांग्रेस उनकी मांगों के लिए लड़ रही है। दूसरा उद्देश्य यह था कि इस तरह से प्राप्त जन-समर्थन की शक्ति का इस्तेमाल ब्रिटिश सरकार से ज्यादा सूबों मांगों को मनवाने के लिए किया जाये।

सबसे बड़ी बात यह है कि तात्कालिक स्वतन्त्रता के लक्ष्य को छोड़कर अथवा आम सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ने के विषय में गांधी जी के उस रण-कौशल में रत्ती भर भी परिवर्तन नहीं आया था जिसे उन्होंने दक्षिण अफ्रीका सत्याग्रह के समय ही विकसित कर लिया था। गांधी नियंत्रित जन-आन्दोलन का दम भरकर साम्राज्यवादियों के साथ समझौते की बातचीत करने की रण-नीति अक्षुण्ण रही। शब्द और कार्य दोनों ही के जरिए गांधी जी ने बार-बार यह बात स्पष्ट कर दी कि उनका मुख्य लक्ष्य अंग्रेजी सरकार के साथ समझौता करना है।

गांधी जी के नेतृत्व में चलने वाले १ ३ के आन्दोलन की उन तीन विशेषताओं का ब्रिटिश सरकार ने अपने दोनों शासकों लार्ड इर्विन और लार्ड विलिंगडन के जरिए यथाशक्ति इस्तेमाल करने की कोशिश की। १ ३०-३२ में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों द्वारा अपनायी गयी कार्यनीति संक्षेप में निम्नांकित थी।

उन्होंने "दोरंगी नीति" अपनायी — जनता का दमन किया और नेताओं के साथ समझौते की बातचीत की। इस नीति के फलस्वरूप ही कांग्रेस ने १ ३१ में आन्दोलन रोक दिया और तृतीय गोलमेज सम्मेलन में अपना प्रतिनिधि भेजने के लिए तैयार हो गयी।

कांग्रेस द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन बन्द करने और गोलमेज सम्मेलन में उसके सम्मिलित होने जैसी सफलता पाकर ब्रिटिश सरकार ने दमन की चक्की चलानी शुरू की । दूसरी ओर गोलमेज सम्मेलन में गैर-कांग्रेसी प्रतिनिधियों के जरिए ऐसे पैंतरे करवाये गये जिनसे कि कांग्रेस का प्रतिनिधि सबसे अलग और अकेला पड़ जाय । इस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने दुनिया के सामने यह प्रकट किया कि भारत में वैधानिक सुधार की समस्या बहुत पेचीदी समस्या है जिसे भारतीय नेता सुलझा नहीं सकते । यह कहते हुए उसने अपना प्रस्ताव जो साम्प्रदायिक निर्णय के नाम से कुख्यात है भारत पर लाद दिया ।

इस तरह गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस को अलग-थलग करने के बाद साम्राज्यवादी शासकों ने उस पर सीधा हमला किया और भयानक दमन आरम्भ कर दिया । गांधी जी के गोलमेज सम्मेलन से लौटने के पहले ही उत्तर प्रदेश और सीमाप्रान्त आदि में आर्डिनेंस राज जारी कर दिया गया और कांग्रेस के कई उच्चतम नेता जिनमें जवाहरलाल नेहरू भी थे जेलों में बन्द कर दिये गये । वायसराय से बातचीत करने और विवादग्रस्त प्रश्नों को हल करने की गांधी जी की सारी कोशिश बेकार हुई । अतः जब गांधी जी और कांग्रेस कार्यसमिति ने मार्च १९३१ की विरामसंधि को समाप्त कर आंदोलन फिर जारी करने का फैसला किया तो समूचे देश में दमन का ऐसा तांडव आरम्भ हुआ जैसा पहले कभी नहीं हुआ था ।

साम्राज्यवादियों की इस कार्यनीति का कांग्रेस-नेताओं ने स्वभावतया प्रत्युत्तर देने की कोशिश की । यह काम जिस ढंग से किया गया वह गांधीवादी दर्शन और कार्यनीति के व्यावहारिक रूप का स्पष्ट परिचायक है ।

नमक कानून तोड़ने के रूप में सविनय अवज्ञा आंदोलन की तैयारी और उसकी शुरुआत के दौर में गांधी जी ने जनता की साम्राज्य-विरोधी चेतना को जागृत करने की कोशिश की । लेकिन साथ ही साथ उन्होंने अहिंसा पर जोर देकर उसे ढीला रखने का भी प्रयास किया ।

ग्यारह सूत्री मांग इसी प्रयास का परिणाम थी । उनका कथन

की रिहाई, मालगुजारी की वसूली आदि सवालों को लेकर निरन्तर झगड़े होते रहे।

इन सभी सवालों पर कांग्रेस-नेताओं ने शिकायतें दूर करवाने की अधिक से अधिक कोशिश की और कहा कि अगर सरकार ने विराम-संधि की शर्तों को न माना तो हम गोलमेज सम्मेलन में अपना प्रतिनिधि नहीं भेजेंगे। सरकार की ओर से कुछ छूटें मिल जाने पर ही गांधी जी को गोलमेज सम्मेलन में जाने दिया गया।

अंग्रेजी सरकार मुसलमानों और कुछ अन्य अल्पसंख्यकों को रियायतें देने की नीति अपनाकर साम्प्रदायिक फूट डाल रही थी। दूसरे गोलमेज सम्मेलन और उसके बाद भी इस नीति का विरोध करने की कोशिश की गयी। लेकिन पता चला कि गोलमेज सम्मेलन में फूट के बीज बोये जा चुके हैं उन्होंने कांग्रेस के ऊपर सीधा वार करने का आधार तैयार कर दिया था। स्वाभावतया इस वार के कारण प्रत्यक्ष कार्रवाई फिर छेड़ देनी पड़ी। लेकिन आंदोलन के दोबारा शुरू होते ही उसके सबसे दूरदर्शी नेता गांधी को नई कार्यनीतियां विकसित करने लगे।

४ जनवरी १९३२ को गांधी जी गिरफ्तार किये गये। ११ मार्च को ही वह इस निष्कर्ष पर पहुंच गये कि पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए होनेवाले आंदोलन का कुशलतापूर्वक संचालन करने से भी अधिक महत्वपूर्ण एक दूसरा काम उन्हें सम्पन्न करना है। भारत सचिव को अपने ११ मार्च के पत्र में उन्होंने लिखा

> "आपको शायद याद होगा कि गोलमेज सम्मेलन में जब अल्पसंख्यकों का दावा पेश किया गया था तो अपने भाषण के अन्त में मैंने यह कहा था कि अपनी जान देकर भी दलित वर्गों को पृथक निर्वाचन दिये जाने का मैं विरोध करूंगा। यह बात मैंने क्षणिक आवेश में आकर अथवा अलंकारिक भाषा का प्रयोग करने के लिए नहीं कही थी।

उन्होंने कहा कि ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने यदि अपना साम्प्रदायिक निर्णय (जिसके अनुसार दलित वर्गों को पृथक निर्वाचन प्रदान किया जाता) दिया तो मैं आमरण अनशन के लिए बाध्य होऊंगा।

दी थी। वह फिर रिहा कर दिये गये क्योंकि उनकी हालत बहुत नाजुक हो गयी थी। रिहा होने पर उन्होंने कहा कि हम राजनीतिक कार्य से बिल्कुल अलग रहेंगे और पूरा समय हरिजन कार्य में लगायेंगे।

१९३३ के अन्तिम महीनों और १९३४ के आरम्भ में गांधी जी देश भर का दौरा करते रहे। इस दौरे का प्रकट उद्देश्य हरिजन कार्य के लिए धन एकत्र करना था लेकिन उन्होंने और अन्य कांग्रेस-नेताओं ने जो जेल से बाहर थे इस अवसर का उपयोग सत्याग्रह आंदोलन के भविष्य के विषय में अनौपचारिक विचार-विमर्श करने के लिए किया। कांग्रेस के कुछ नेता आपस में पहले ही विचार-विमर्श कर चुके थे और स्वराज पार्टी सगठित करने की बात सोच रहे थे। स्वभावतया उन्होंने गांधी जी की सलाह मांगी। इस सारे विचार विमर्श का परिणाम यह हुआ कि ७ अप्रैल १९३४ को गांधी जी ने एक वक्तव्य दिया जिसमें उन्होंने कहा

> "सभी कांग्रेस-जनों को मेरी सलाह है कि वे स्वराज के लिए सविनय अवज्ञा बन्द कर दें। खास-खास मामों के लिए ही वे सविनय अवज्ञा करें। उपरोक्त काम वे सिर्फ मेरे ऊपर छोड़ दें। मेरे जीवन काल में फिर यह काम केवल मेरे ही संचालन में किया जाय। सत्याग्रह का प्रणेता और प्रयोगकर्ता होने के नाते ही मैं यह मत व्यक्त कर रहा हूं।

गांधी जी के इस बयान के बाद सरकार का एक बयान निकला जिसमें कांग्रेस को आश्वासन दिया गया कि मिस्टर गांधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन समाप्त करते हुए हाल में जो नीति वक्तव्य दिया है उसका अनुमोदन करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की अथवा कांग्रेस-नेता चाहें तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की बैठक करने में कोई बाधा न डाली जायगी।

इस तरह अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के मई-अधिवेशन का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस अधिवेशन ने आंदोलन बन्द करने के गांधी जी के वक्तव्य का अनुमोदन किया और केन्द्रीय विधान सभा के आगामी चुनाव में भाग लेने का फैसला किया।

प्रश्न उठता है कि गांधी जी ने ऐसा क्यों किया ? क्या कारण है कि जब देश में राष्ट्रीय शत्रु के विरुद्ध विराट जन-आन्दोलन छिड़ा हुआ था ठीक उसी समय इस आन्दोलन के सर्वोच्च नेता को एक अपेक्षाकृत कम महत्त्व के सवाल पर ध्यान केन्द्रित करने की तथा इस राजनीतिक जन-आन्दोलन के बदले सामाजिक सुधार आन्दोलन का आधार बनाने की सूझी ? क्या कारण है कि मौका मिलते ही उन्होंने जन-सत्याग्रह को स्थगित कर देने की सलाह दी ?

अगर हम सत्याग्रह सम्बन्धी गांधी जी के वक्तव्यों को ही अपना आधार बनायें तो हमें इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल सकता। सत्याग्रह के उनके सिद्धान्त के अनुसार न्यायपूर्ण उद्देश्य के लिए किये जाने वाले जन-आन्दोलन को रोकने का काम तभी किया जा सकता है जब आन्दोलन हिंसात्मक रूप धारण कर ले या उसके हिंसात्मक रूप धारण करने का खतरा हो। १९२२ में आन्दोलन स्थगित करते हुए गांधी जी ने इसी बात पर जोर दिया था। पर १९३२ में ऐसी कोई बात नहीं हुई थी। जैसा कि गांधी जी चाहते थे विदेशी शासकों के भयानक से भयानक अत्याचारों का उत्तर सत्याग्रहियों ने शान्त और अहिंसक रूप से दिया था।

हजारों सत्याग्रही युवक और युवतियों ने गांधी जी के आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन किया था। तब जब यह मालूम हुआ कि अछूतों के पृथक निर्वाचन के प्रश्न पर गांधी जी ने अनशन करने का

फैसला किया है तो उन्हें बहुत बड़ा धक्का लगा। उससे भी बड़ा धक्का उन्हें तब लगा जब उन्हें ज्ञात हुआ कि गांधी जी ने अपना सारा समय और शक्ति हरिजन उद्धार कार्य में लगाने का फैसला किया है। जब उन्होंने देखा कि साम्राज्य-विरोधी राजनीतिक आंदोलन का सर्वोच्च नेता अपेक्षाकृत एक साधारण सामाजिक सवाल में अपनी शक्ति लगा रहा है और अपने अनुयायियों से भी यही करने को कह रहा है तो उन्हें ऐसा लगा कि उनके साथ विश्वासघात किया जा रहा है। यह सब देख कर वे क्षुब्ध हो उठे।

गांधी जी ने कार्यनीति में प्रकटतः आकस्मिक परिवर्तन क्यों किया और अपने हजारों अनुयायियों को असन्तुष्ट करने का खतरा क्यों मोल लिया? कुछ लोग कहते हैं कि इसका कारण यह था कि गांधी जी की राजनीतिक संघर्षों से अधिक रुचि सामाजिक सुधार में थी। क्या यह सही है? बिल्कुल नहीं। गांधी जी सर्वोपरि एक खास वर्ग, पूंजीपति वर्ग के अत्यन्त कुशल राजनीतिक नेता थे। इसी वर्ग के हित में वह सारा काम करते थे। सितम्बर १९३२ का उनका अनशन और उसके बाद हरिजन सुधार के प्रकटतः सामाजिक सवाल को लेकर उनका काम में जुट जाना एक खास राजनीतिक परिस्थिति से निपटने की उनकी कार्यनीति का एक अभिन्न कदम था जिसे उन्होंने बड़ी कुशलता के साथ निर्धारित किया था।

इस सिलसिले में यह स्मरण करना चाहिए कि १९३२ का संघर्ष किस तरह छेड़ा गया था। दूसरे गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार में कोई समझौता नहीं हो पाया था। साम्राज्य-समर्थक राजनेताओं ने कांग्रेस जैसे राष्ट्रीय संगठन के लिए जन-संघर्ष छेड़ने के सिवा कोई चारा न था। दूसरी ओर सरकार भी कांग्रेस के साथ बल परीक्षण के लिए कटिबद्ध थी। उसने इस बात का पूरा एहतियात रखा था कि १९३०-३१ की कहानी (यानी कांग्रेस और सरकार के बीच समझौते की वार्ता) न दुहरायी जाय। दूसरे शब्दों में १९३२ का संघर्ष गांधी जी तथा उनके सहकर्मियों पर जबरन लादा गया था।

गांधी जी की राय में अगर यही परिस्थिति रही तो सरकार

अपनी मनचाही करने में सफल होगी। यह इच्छानुकूल संविधान बना सकी। इस संविधान का उपयोग गैर-कांग्रेसी पार्टियां जिनमें साम्प्रदायिक पार्टियां भी सम्मिलित हैं कांग्रेस का बहिष्कार करने के लिए करेंगी और ब्रिटिश सरकार इन पार्टियों का इस्तेमाल राष्ट्रीय मांग को ठुकराने के लिए करेगी। गांधी जी ऐसी स्थिति नहीं आने देना चाहते थे। अतः वह नेताओं के साथ बातचीत का दरवाजा खोलना और इसके लिए आंदोलन रोक देने के सभी उपाय अपनाना चाहते थे।

इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर गांधी जी ने एक ऐसा सवाल चुना जो सामाजिक के साथ-साथ राजनीतिक सवाल भी था—यह था अछूतों के लिए पृथक अथवा संयुक्त निर्वाचन का सवाल। इसने गांधी जी को जनता के सामने आने और सामाजिक सुधार के लिए कुछ करने का मौका दिया। साथ ही इसने संवैधानिक सुधार के एक पहलू को लेकर सरकार के साथ समझौता शुरू करने का भी सुयोग प्रदान किया। लेकिन सरकार ने राजनीतिक सवाल पर बातचीत शुरू करने से इनकार कर दिया। दूसरी ओर गांधी जी ने इस अस्पृश्य सवाल का उपयोग अपने सह-कर्मियों और जनता के साथ सम्बन्ध सुदृढ़ करने के लिए किया।

बाद की घटनाओं से पता चल गया कि हरिजन कल्याण में गांधी जी की दिलचस्पी केवल सामाजिक न थी। जेल से छूटने पर उन्होंने सबसे पहला काम सामूहिक अवज्ञा के जरिए सत्याग्रह को बन्द करवाने का किया। इस तरह राजनीतिक प्रश्न पर समझौते का द्वार खोला गया। लेकिन सरकार चाहती थी कि कांग्रेस उसके सामने पूरी तरह घुटना टेक दे। अब गांधी जी की हार हुई और अपने सम्मान की प्रतिष्ठा बचाने के लिए आंदोलन छोड़ना पड़ा। यदि आंदोलन को जन-आंदोलन नहीं बनाया गया। राजनीतिक सवालों पर एक वर्ष तक कुछ न बोलने के बाद अलग रहने की धारणा बदले गांधी जी ने एक बार फिर सरकार की ओर समझौते का हाथ बढ़ाया।

उनका हरिजन कार्य काफी हद तक ऐसी परिस्थिति से निकलने का प्रयास मात्र था जिसमें जनता के साथ नाता भंग हो जाने के कारण का दम घुटा था। यह जनता के साथ सम्पर्क-बिन्दु ढूंढ़ने की वैकल्पिक

सुधारों के सम्बंध में टूट चुकी बातां को फिर जारी करने की और नयी परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए कांग्रेस को पुनर्संगठित करने की कोशिश की।

यही कारण है कि जहां १९२२ में असहयोग आंदोलन के रोके जाने पर मोतीलाल नेहरू जैसे नरम-दली दक्षिणपंथी नेता तक ने विरोध प्रकट किया था वहां १९१४ में आंदोलन रोकने की गांधी जी की सलाह का समूचे दक्षिणपंथी कांग्रेस नेतृत्व ने सोत्साह अनुमोदन किया। इसके अलावा १९२०—१ के मध्य जहां कांग्रेस का नेतृत्व स्वराजियों और यथास्थितिवादियों में विभक्त था वहां १९३ के बाद के काल में संसदीय कार्य के प्रश्न पर नेतृत्व में पूर्ण मतैक्य था। १९१४ में गांधी जी ने स्वयं कहा कि संसदीय मनोवृत्ति स्थायी बन चुकी है।

कार्यनीति के सम्बंध में नेताओं में प्रायः पूर्ण मतैक्य था लेकिन अगर एक संगठन के रूप में कांग्रेस को ले लें तो उसमें निश्चित रूप से एकता न थी। साधारण कांग्रेस-जनों के बीच बड़ी गरम बहस छिड़ी हुई थी। १९१२ के अनशन के समय से अपनायी गयी गांधी जी की कार्यनीति पर गम्भीर शंका प्रकट की जा रही थी। कुछ दक्षिण-पंथी नेताओं की जिन्होंने स्वराज पार्टी कायम करने की पेशकदमी की थी बड़ी ही तीव्र आलोचना की जा रही थी। १९११—१४ में कांग्रेस नेतृत्व की नीतियों के विरुद्ध जैसा व्यापक और तीव्र असंतोष फैला हुआ था वैसा पहले कभी नहीं देखा गया था। जवाहरलाल नेहरू द्वारा १९१४ में गांधी जी को लिखे एक पत्र से इसका कुछ अन्दाज मिलता है। जवाहरलाल नेहरू ने लिखा था

> आजादी का झंडा धूमधाम के साथ उन लोगों के हवाले किया गया जिन्होंने दुश्मन के आदेश पर ठीक उस समय जबकि राष्ट्रीय संघर्ष चरम शिखर पर था उसे झुका दिया था। झंडा उन लोगों के हवाले किया गया था जिन्होंने ढिंढोरा पीटकर यह ऐलान किया था कि हमने राजनीति छोड़ दी—क्योंकि राजनीति उन दिनों खतरनाक हो गयी थी। लेकिन राजनीति के निरापद होते ही वे उसमें कूद कर सबसे आगे आ खड़े हुए।

और कांग्रेस तथा राष्ट्र के नाम पर बोलने वाले इन लोगों के आदर्शों का तो जरा मुलाहिजा कीजिए। ये आदर्श क्या हैं एक छिपनी है वास्तविक समस्याओं से कतराना है कांग्रेस के राजनीतिक उद्देश्यों तक का जहां तक उनकी हिम्मत पड़ती है गला घोंटना है हर स्थिर स्वार्थ के लिए बड़ी ही हमदर्दी और प्यार जाहिर करना है आजादी के शोषित मजूरों के सामने माथा टेकना है लेकिन कांग्रेस के अन्दर के आगे बढ़े हुए और लड़ाकू तत्वों से जब सामना हो तो बड़े ही हठीले बड़े ही डिक्टेटर बन जाना है।

और जब आंदोलन बन्द कर दल तथा संसदीय कार्यक्रम अपनाने के १९३४ के निर्णय की खबर मिली तो नेहरू को ऐसी मार्मिक पीड़ा हुई कि क्या जैसे वर्षों के भक्ति के बन्धन एकबारगी छिन्न-भिन्न हो गये हों। श्री तेन्दुलकर के शब्दों में उस समय "बहुत सारे कांग्रेसजनों की यही प्रतिक्रिया थी।

पर आम कांग्रेस जनों ने इस विरोध ने संसदीय कार्यक्रम के विरोध का रूप धारण नहीं किया। नेताओं की तरह वे भी आजादी की लड़ाई के एक हथियार के रूप में संसदीय संस्थाओं के महत्व को समझते थे। विधान सभाओं का बॉयकाट करने का स्वयं कोई खास जोश नहीं था। लेकिन प्रश्न यह था कि संसदीय संस्थाओं का इस्तेमाल किसलिए करना है। क्या उनका इस्तेमाल अंग्रेजों के साथ पुनः बातचीत शुरू करने के लिए करना है? या साम्राज्य-विरोधी जन-आंदोलन को बल पहुंचाने के लिए करना है? दूसरे संसदीय संस्थाओं का उपयोग ही साम्राज्य विरोधी आंदोलन को बल पहुंचाने का एकमात्र अथवा मुख्य साधन होगा या यह गौण रहेगा? और क्या जनता का खासकर मजदूरों किसानों और मध्य वर्गों का साम्राज्यवाद और उसके दलालों के विरुद्ध समझौता-हीन संघर्ष मुख्य काम होगा? आम्न साधारण कांग्रेस-जनों के दिमागों में ये प्रश्न उथल-पुथल मचा रहे थे।

कांग्रेस संगठन की इन अन्दरूनी घटनाओं के साथ-साथ राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में कई बहुत बड़े-बड़े घटनाएं हुए। १९२

१३ का विश्व आर्थिक संकट आया जो पूंजीवादी व्यवस्था का एक अभूतपूर्व संकट था। सोवियत संघ ने अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना सफलतापूर्वक पूरी कर ली। जर्मनी में नाजीवाद का उदय हुआ और कई अन्य पूंजीवादी देशों में नाजीवाद सरीखी काली शक्तियों का उदय हुआ। मेरठ षड्यंत्र केस के कम्युनिस्ट अभियुक्तों ने बड़ी ही शान के साथ कम्युनिज्म के ध्येय की हिमायत की। इस सबसे हजारों क्रान्तिकारी युवक कम्युनिस्ट विचारधारा की ओर आकृष्ट हुए।

देश में बिखरे हुए विभिन्न कम्युनिस्ट समूहों ने बल प्राप्त किया और धीरे-धीरे मिलकर १९३३ के अन्त में उन्होंने हिन्दुस्तानी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रथम अखिल भारतीय केन्द्र की स्थापना की। इस केन्द्र की स्थापना के कुछ ही महीनों बाद भारत सरकार ने कम्युनिस्ट पार्टी को गैर-कानूनी करार दिया। इस कार्रवाई से हिन्दुस्तानी कम्युनिस्ट पार्टी के विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण में बाधा पड़ी। पर गांधीवादी नेतृत्व से निराश हजारों साम्राज्य-विरोधी तत्त्वों को समाजवाद के उत्तरोत्तर चिन्तन की दिशा में जाने से रोका नहीं जा सका। मई १९३४ में इस दिशा में सोचने वाले कांग्रेस-जनों ने एक सम्मेलन करके कांग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना की।

गांधी जी ने महसूस किया कि कांग्रेस के अन्दर उठती नई समाजवादी धारा को जवाहरलाल नेहरू जैसा प्रबल प्रवक्ता मिल गया है। उन्होंने एक नया कार्यक्रम अपनाया। यह कार्यक्रम शुरू में आम कांग्रेसजनों को विस्मयकारी प्रतीत हुआ। लेकिन बाद में उन लोगों के लिए, जो इस नई उग्रधारा से लड़ना चाहते थे यह कार्यक्रम बहुत मददगार साबित हुआ।

सितम्बर १९३४ में गांधी जी ने सरदार पटेल को लिखा

> इनके अलावा समाजवादियों की बढ़ती हुई जमात है। जवाहरलाल इनके निर्विवाद नेता हैं। मैं बखूबी जानता हूं कि वे क्या चाहते हैं, उनके क्या विचार हैं। समाजवादी गुट कमोबेश उनके ही मत का प्रतिनिधित्व करता है यद्यपि उनकी कार्यविधि सम्भवतः हूबहू वही नहीं है जो जवाहरलाल की है। इस गुट का

प्रभाव और महत्त्व लाजिमी तौर पर बढ़ेगा। उनकी अधिकृत पुस्तिकाओं में जो कार्यक्रम प्रकाशित किया गया है उसके साथ मेरे मौलिक मतभेद हैं। लेकिन मैं उस नैतिक दबाव के कारण जो शायद मैं डाल सकता हूं इन पुस्तिकाओं में प्रतिपादित विचारों के प्रसार को रोकूंगा नहीं। यदि मैं कांग्रेस में बना रहूं तो इसका अर्थ ऐसा दबाव डालना होगा।

गांधी जी का जवाबी रास्ता यह था कि कांग्रेस से अवकाश ग्रहण कर लिया जाय। अपने नये प्रस्ताव की व्याख्या करते हुए १७ सितम्बर १९३४ को उन्होंने एक लम्बा बयान दिया। इस बयान में उन्होंने अपने और बुद्धिजीवियों के मतभेद के मुख्य-बिन्दु निरूपित किये। उन्होंने कहा कि अहिंसा मेरे लिए धर्म है नीति नहीं। चर्खा और खादी में अपने विश्वास की उन्होंने पुनर्घोषणा की। समाजवादी पार्टी के साथ उन्होंने अपने मतभेद प्रकट किये और अन्त में कहा कि मैं महसूस करता हूं कि "सत्याग्रह के अपने प्रयोग को चलाते जाने के लिए जिसके लिए मैंने अपना पूरा जीवन अर्पित कर रखा है मुझे पूर्ण निर्जनता और कार्य की परम स्वतन्त्रता दरकार है।

स्वाभाविकतया गांधी जी के प्रस्ताव से कांग्रेस के अन्दर तीव्र वाद विवाद छिड़ गया। अक्तूबर में अखिल भारतीय अधिवेशन के लिए बम्बई में एकत्र होने वाले प्रतिनिधियों में चर्चा का यही मुख्य विषय था। गांधी जी से अपने निश्चय पर फिर से विचार करने की बार-बार अपीलें की गयी लेकिन वह इसमें सफल न हुए। अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास कर गांधी जी के नेतृत्व में विश्वास प्रकट किया गया।

कांग्रेस से अवकाश ग्रहण करने के दो उद्देश्य बताये गये थे। एक यह कि गांधी जी अपना पूरा समय और शक्ति रचनात्मक कार्यक्रम में लगा सकें। दूसरे, कांग्रेस के अन्दर के नरम-पंथी समाजवादी तथा अन्य गुट नैतिक दबाव के खतरे से मुक्त हो कर काम कर सकें। अब गांधी जी ने विवादास्पद राजनीतिक विषयों पर सार्वजनिक वक्तव्य या भाषण देना बंद कर दिया। हरिजन में उनके लेख देशव्यापी दौरे के दौरान

उनके अन्तर्गत भाषण प्रेस-संवाददाताओं को दी गयी मुलाकातें और अधिकतर पत्र-व्यवहार इस समय खादी, ग्रामोद्योग, अस्पृश्यता, सफाई, गोरक्षा, मद्य-निषेध और ऐसे ही बहुत सारे विषय रहा करते थे जिनका मौजूदा राजनीतिक सवालों से कोई लगाव न था।

लेकिन वास्तव में गांधी जी कांग्रेस के राजनीतिक जीवन पर प्रभाव डाल रहे थे। क्योंकि कांग्रेस-जन किसी भी समय आकर उनसे "परामर्श" कर सकते थे। कार्यसमिति के प्रमुख सदस्य सभी महत्वपूर्ण राजनीतिक सवालों पर सलाह लेने के लिए उनके पास पहुंचते थे। अतः कांग्रेस से अवकाश ग्रहण करना राजनीतिक कार्यकलाप से अवकाश ग्रहण करना हरगिज न था। अपने प्रिय सहकर्मियों और अनुयायियों से बातचीत के दौरान गांधी जी ने यह बात स्पष्ट कर दी। उदाहरण के लिए, फरवरी १९३६ में हुई गांधी सेवा संघ की एक बैठक में भाषण देते हुए गांधी जी ने कहा

> "रचनात्मक क्षेत्र के कार्यकर्ता राजनीतिक कार्यक्रम को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। और दूसरी ओर से भी यही बात होती है। पर वास्तव में ऐसा कोई अन्तर्विरोध नहीं है। मेरा ख्याल था कि अब तक यह चीज शायद सभी कार्यकर्ताओं के सामने स्पष्ट हो गयी होगी। राजनीतिक और रचनात्मक कहे जाने वाले कार्यक्रमों में बिलकुल ही कोई भेद नहीं है। हमारी कार्य नीति में किसी स्पष्ट रेखा का अस्तित्व नहीं है।

गांधी जी केवल कांग्रेस नेताओं को ही सलाह देकर नीतियों को विशेष सांचों में ढालने की कोशिश नहीं कर रहे थे उन्होंने उदीयमान कांग्रेस समाजवादी पार्टी के नेताओं को भी सलाह देने और प्रभावित करने की चेष्टा की। आचार्य नरेन्द्रदेव को लिखे एक पत्र में उन्होंने समाजवादियों को प. नेहरू की सलाह लेने का परामर्श दिया।

जवाहरलाल नेहरू को अपना नेता मानने और उनके निर्देशन में काम की कांग्रेस समाजवादियों को दी गयी सलाह आकस्मिक न थी। न ही यह नेहरू के प्रति व्यक्तिगत आदर भावना की अभिव्यक्ति मात्र

थी । यह एक निश्चित नीति का अंग थी जिसे गांधी जी बना रहे थे । मार रहे कि लाहौर कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए जवाहरलाल नेहरू के नाम की सिफारिश करते हुए गांधी जी ने क्या मन्त्र कहे थे । उन्होंने कहा था कि नेहरू का निर्वाचन तरुणों को गौरव प्रदान करना होगा और तरुणों की शक्ति वैसे ही वशीभूत कर रखने की चीज है जैसे कि वाष्प शक्ति । संक्षेप में गांधी जी नेहरू को वह साधन समझते थे जिसके जरिए कांग्रेस नेता युवकों के जोश को नियंत्रित करके उचित धाराओं में मोड़ सकते थे ।

अतः उनकी नीति यह थी कि एक ओर कांग्रेस के अन्दर दक्षिण पंथियों को सुदृढ़ किया जाय दूसरी ओर जवाहरलाल नेहरू का नेतृत्व ग्रहण किया जाय और वह खुद पृष्ठभूमि में रह कर सलाह देते रहे और दक्षिण-पंथ तथा वाम-पंथ दोनों की नीतियों को प्रभावित करते रहे । सक्रिय कांग्रेस नेतृत्व से उनके अवकाश ग्रहण करने का यही अर्थ था ।

कांग्रेस के दक्षिण-पंथी नेतृत्व की राजनीतिक आवश्यकताओं के लिए बिल्कुल ऐसी ही कार्यनीति दरकार थी। ब्रिटिश सरकार नया संविधान लागू करने पर आमादा थी। यह चुनौती कांग्रेस के सामने थी। ऐसी हालत में कांग्रेस अपने संगठन में कोई भी दरार पड़ने नहीं दे सकती थी। दक्षिण और वामपंथ के मत-भेद गांधीवाद, आधुनिक समाजवाद और पूंजीवादी संसदीयता जैसे सामाजिक दर्शनों के भेद, सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों पर भेद—ये सारे भेद ऐसे थे जिनमें एक संगठन के रूप में राष्ट्रीय शत्रु का मुकाबला करने के लिए सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक था। अतः कांग्रेस के दक्षिण-पंथी नेताओं के लिए यह आवश्यक था कि संसदीयता के हामियों और अन्य दक्षिण-पंथियों की प्रभुता कायम रखते हुए समाजवादियों और दूसरे वाम पंथियों को कांग्रेस के अन्दर जगह दी जाय।

और न केवल वाम-पंथियों को स्थान देना था, बल्कि कुछ और भी करना जरूरी था। उन्हें ऐसी स्थिति में रखना था जिससे कि मेहनतकश जनता, समाजवादी विचार रखनेवाली बढ़ती हुई जमात और अन्य उग्रवादी युवकों के मन में यह विश्वास जमे कि कांग्रेस उग्र साम्राज्यवाद विरोध की सच्ची नीति पर चल रही है। अतः कांग्रेस नेतृत्व ने १९२९ की अपनी कार्यविधि अपनायी। वामपक्ष का नेता संगठन का अध्यक्ष बना दिया गया। १९२९ की तरह १९३६ में जवाहरलाल नेहरू पुनः कांग्रेस अध्यक्ष निर्वाचित किये गये। और १९३७ में

कार्यक्षेत्र मे आये। इस तरह करोड़ों लोग कांग्रेस के साथ आये और १९३७ के आम चुनाव में प्रतिक्रियावादियों की करारी हार हुई। ११ मे से ७ प्रान्तों में कांग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त हुआ।

वामपक्ष की ओर कांग्रेस का यह झुकाव चुनाव के बाद के काल मे भी जब कांग्रेस-नेताओं और ब्रिटिश सरकार मे भारी मतभेद उठ खड़ा हुआ बड़ा काम आया। नये संविधान के अन्तर्गत नई विधान सभाएं चुनी गयी थी इस संविधान मे प्रान्तीय गवर्नरों को इतने व्यापक अधिकार दे रखे थे कि इन अधिकारो का प्रयोग होने पर निर्वाचित विधान सभाएं और उनके प्रति उत्तरदायी मंत्रिमंडल कठपुतला बनकर रह जाते। अतः कांग्रेस ने माग की कि अपने बहुमत के प्रान्तों मे हम तभी मंत्रिमंडल गठित करेंगे जब सरकार आश्वासन दे देगी कि इन अधिकारो का प्रयोग नही किया जायेगा। अंग्रेज ऐसा आश्वासन देने को तैयार न थे। अतः विषम की हालत पैदा हो गयी। ऐसा लगा कि पहले ही पग पर नये संविधान का बंटाधार हो जायगा।

कांग्रेस संगठन की ठोस एकता ने अंग्रेजों को पीछे हटने को बाध्य किया। उन्होंने देख लिया कि अगर कांग्रेस की मांगें मानी न गयी तो परिणाम गम्भीर हो सकते हैं। ब्रिटिश सरकार की ओर से भारत सचिव लार्ड जेटलैण्ड और कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी के बीच खुली बहस छिड़ गयी। इस बहस के अन्त में दोनों पक्षों में एक समझौता हुआ। यह समझौता राष्ट्रीय दृष्टि से पूर्णतया सन्तोषजनक न था। कांग्रेस के अन्दर के उग्र तत्वों ने इसकी आलोचना की। फिर भी इसकी बदौलत कांग्रेस पद-ग्रहण के पक्ष मे निर्णय करने मे समर्थ हुई। (प्रसंग वश कह दें कि इस बहस में गांधी जी की भूमिका साफ बताती है कि उनके अवस्थान ग्रहण करने के पीछे वास्तविकता क्या थी)।

इस फैसले ने गांधी जी की कार्यविधि बदल डाली। रचनात्मक कार्यक्रम तक ही अपनी सक्रियता को सीमित रखने के अपने पुराने निर्णय पर वह अब अड़े नही रहे। १७ जुलाई १९३७ को उन्होंने "हरिजन" मे लिखा

परामर्श देते हुए गांधी जी ने मताधिकारी शिक्षा कर आदि सवालों के बारे में नीति निर्धारित की। प्रान्तीय कांग्रेस मंत्रिमंडलों की जहां गवर्नरों या वायसराय के साथ टक्कर होती थी वहां भी गांधी जी कुशलतापूर्वक हस्तक्षेप करते थे। उदाहरण के लिए बिहार और उत्तर प्रदेश में राजबंदियों की रिहाई के प्रश्न पर जब संकट उपस्थित हुआ तो गांधी जी कांग्रेस पक्ष के राजनीतिक प्रवक्ता बने। इसी तरह उड़ीसा में जब मंत्रिमंडल के मातहत एक सिविलियन अफसर गवर्नर नियुक्त किया गया तो उनके हस्तक्षेप से ही संकट दूर हुआ।

पर एक संयुक्त संगठन में—जिसका अध्यक्ष वामपक्ष का नेता था—वाम और दक्षिण पक्ष की एकता वामपंथ का बल बढ़ाने में आप ही सहायक बन गयी। समाजवाद पंथी और समझौताहीन साम्राज्य-विरोध पंथीवादों और पूंजीपतियों के विरुद्ध संघर्ष दुनिया भर की साम्राज्य विरोधी फासिज्म-विरोधी और शान्तिपक्षी शक्तियों की एकजुटता आदि विचार आम जनता में जितने बड़े पैमाने पर फैल गये उतना पहले संभव न था। मजदूर वर्ग किसानों और नौजवानों और जनता के अन्य अंगों के संगठन बड़ी तेजी से बढ़ने लगे। कांग्रेस समाजवादी कम्युनिस्ट और वैज्ञानिक समाजवाद की हिमायत करने वाली अन्य पार्टियां और दल नये वेग से आगे बढ़े। रियासतों में बसने वाले करोड़ों लोग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुए और अपनी-अपनी रियासतों के अन्दर जनवादी संविधान के लिए लड़ने लगे।

एक हद तक अन्तरराष्ट्रीय घटनाएं भी इसके पीछे थीं। सोवियत संघ के बढ़ते हुए बल का यूरोप में फासिज्म-विरोधी ताकतों की एकजुटता का स्पेन चीन और अबीसीनिया आदि में फासिज्म के विरुद्ध और राष्ट्रीय आजादी के लिए लड़ने वाली ताकतों के ऐतिहासिक संग्राम का असर भी अपना रंग दिखा रहा था। कांग्रेस नेतृत्व के अन्दर भी यह नयी चेतना प्रतिबिम्बित हुई और यह उग्र साम्राज्य-विरोध तथा समाजवाद की नयी ताकतों को मजबूत करने में मददगार हुई।

९ पदग्रहण और उसके बाद

साम्राज्य-विरोधी संयुक्त मोर्चे की पहली मंजिल में जब अंग्रेजों की चुनौती का सामना करने की तैयारी चल रही थी और चुनाव में शानदार जीत हासिल की गयी थी उस समय दक्षिण-पंथी नेताओं को वाम-पंथी ताकतों के शक्तिशाली होते जाने से अधिक चिन्ता नहीं हुई। लेकिन अंग्रेजों से एक जीत हासिल कर लेने के बाद यह परिस्थिति उन्हें बहुत खटकने लगी। श्री तेन्दुलकर लिखते हैं कि कई प्रान्तों में कांग्रेस मंत्रियों द्वारा पदग्रहण किये जाने के बाद

> "नयी-नयी समस्याएं उठ खड़ी हुई और आन्तरिक संघर्ष जो अभी तक ज्यादातर सैद्धान्तिक संघर्ष मात्र थे सामने आने लगे। ऐसी बात न थी कि कोई कांग्रेस-नेताओं को परेशान करना चाहता था। पदग्रहण के विरोधी भी ऐसा नहीं करना चाहते थे। पर किसान प्रदर्शनों और हड़तालों आदि के जरिए उन पर दबाव डालने की लगातार कोशिशें की जाने लगीं। इससे कांग्रेस-नेताओं को बड़ी परेशानी महसूस हुई। बिहार में किसान आंदोलन कांग्रेस-संगठन के साथ टकराने लगा।

अब दक्षिण-पंथी नेताओं को गांधी जी की रहनुमाई में दो मोर्चों पर युद्ध करना पड़ा। एक ओर अंग्रेजों से मुकाबला था जो अपनी संघ योजना को भारत पर जबरन लादने की कोशिश कर रहे थे। दूसरी ओर वाम-पंथियों से मोर्चा था जो चुनाव-आंदोलन और उसमें प्राप्त

नीतों का इस्तेमाल कर कांग्रेस को वामपंथी मार्ग पर खींच लाने और उग्र साम्राज्य विरोध की ताकतों को और मजबूत करने का प्रयत्न कर रहा था। अब सवाल सिर्फ राष्ट्रीय शत्रु के विरुद्ध दक्षिण और वाम पक्ष का संयुक्त मोर्चा कायम करने का नहीं था। अब समस्या यह उठ खड़ी हुई थी कि वामपक्ष और अंग्रेज इन दोनों ही के मुकाबले में दक्षिण पक्ष को किस तरह सुदृढ़ किया जाय। इस परिस्थिति का सामना करने के लिए गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस ने एक नयी कार्यनीति अपनायी। इस नयी कार्यनीति के मूल तत्व थे

एक मजदूर और किसान संगठनों पर हमला बोल दिया गया—एक ओर पुलिस-दमन और दूसरी ओर विचारधारात्मक हमला। मजदूरों और किसानों के संगठनों के खिलाफ गिरफ्तारियां मुकदमें लाठी वर्षा और यहां तक कि गोलीबार भी शुरू कर दिये गये। कानून की वे बदनाम धाराएं जिनका इस्तेमाल अंग्रेजों ने कांग्रेस के विरुद्ध किया था कांग्रेस द्वारा लड़ाकू जन-आन्दोलनों के खिलाफ इस्तेमाल की जाने लगी। इनका इस्तेमाल करने वाले कांग्रेस-मंत्रिमंडलों का समर्थन करते हुए गांधी जी ने कहा

> नागरिक अधिकार अपराधियों की स्वतन्त्रता नहीं है
> सात प्रांतों में कांग्रेस का शासन है। ऐसा लगता है कि कुछ लोगों ने यह मान लिया है कि कम-से-कम इन प्रांतों के अन्दर वे जो चाहे कह और कर सकते हैं। पर जहां तक मेरी समझ है कांग्रेस ऐसी कोई छूट बर्दाश्त नहीं करेगी।

दो प्रांतों में जो ताकत मिली थी उसका इस्तेमाल कुछ राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने के लिए किया गया। ऐसा करने का उद्देश्य एक तो अंग्रेजों के मुकाबले में अपनी स्थिति को मजबूत बनाना था दूसरे यह साबित करना था कि वे ही देश की मुख्य समस्याओं को हल करने की योग्यता रखते हैं। पदग्रहण के बीच ही बाद कांग्रेसी प्रांतों के उद्योग मंत्रियों का सम्मेलन आयोजित किया गया। सम्मेलन में पूरे देश के आर्थिक विकास की समान योजना तैयार करने के लिए विचार-विमर्श

हुआ। इसी सम्मेलन में राष्ट्रीय योजना समिति गठित की गयी जिसके अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू और सचिव के टी शाह थे। इसी तरह शिक्षाविदों का एक सम्मेलन भी बुलाया गया जिसमें नयी शिक्षा-प्रणाली की रूपरेखा तैयार की गयी। यही बुनियादी तालीम की शुरुआत थी।

देशी रियासतों में जनवादी सुधार के लिए वहां की जनता द्वारा छेड़ गये आंदोलन के प्रति नया रुख अपनाया गया।

असहयोग के दिनों से कांग्रेस ने रियासतों के अन्दरूनी मामलों में गैर-दखलन्दाजी का रुख अपना रखा था। इस रुख के पक्ष में दलील यह दी जाती थी कि राष्ट्रीय संग्राम विदेशियों के खिलाफ है और रियासती जनता और राजाओं का पारस्परिक सम्बन्ध इनका अन्दरूनी मामला है यह राष्ट्रीय संग्राम का हिस्सा नहीं है। इसीलिए १९२८ में जब नेहरू रिपोर्ट तैयार की जा रही थी तो रियासतों के सवाल को उससे बिल्कुल दूर रखा गया था।

पर गोलमेज सम्मेलन में यह बात साबित हो गयी कि अंग्रेज शासक कांग्रेस और स्वराज की उसकी मांग का विरोध करने के लिए एक हथियार के रूप में देशी नरेशों का इस्तेमाल कर रहे हैं। १ ३५ के गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट के अमल में आने के बाद यह चीज और भी स्पष्ट हो गयी। अतः कांग्रेस नेताओं के लिए देशी नरेशों और उनके निरंकुश शासन के प्रति नया रुख अपनाना आवश्यक हो गया। इसके अलावा देश भर में उग्र शक्तियों के विकास का रियासती जनता पर भी प्रभाव पड़ने लगा था। कांग्रेस नेताओं की पसन्दगी या नापसन्दगी की परवाह न करते हुए रियासती जनता उत्तरदायी शासन के नारे के साथ अपने जनवादी अधिकारों के लिए लड़ने के वास्ते मैदान में उतरने लगी थी।

अतः १ ३८ में कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में रियासतों के बारे में नयी नीति अपनायी। इस नीति के अनुसार गैर-दखलन्दाजी का पुराना रुख बदल दिया गया और रियासती जनता को अपना संगठन कायम करने तथा उत्तरदायी सरकार के लिए लड़ने के वास्ते प्रोत्साहित किया जाने लगा। पर पुरानी नीति इस अर्थ में अब भी कायम रही

कि शोषण युक्त रियासतों के अन्दर राजनीतिक सम्पन्न नहीं थी। गांधी जी खुद रियासतों के मामलों में मध्यस्थता देने लगे। डॉ. पट्टाभि सीतारम्मैया और जमनालाल बजाज जैसे उनके विश्वस्त सहयोगी इन संघर्षों में सक्रिय भाग लेने लगे। राजकोट के संघर्ष का गांधी जी ने खुद नेतृत्व किया।

लेकिन रियासती जनता में भी यही प्रवृत्ति सामने आयी जो गांधी जी के नेतृत्व में चलाये जाने वाले अन्य संघर्षों में प्रकट हुई थी। रियासती जनता गांधी जी द्वारा खींची सीमा रेखा से आगे जाने लगी। चौथे दशक के अन्तिम भाग में विभिन्न रियासती जन-आंदोलन तत्कालीन ब्रिटिश भारत में हुए राष्ट्रीय आंदोलन के ही स्तर के थे। रजवाड़ों के अत्याचारी शासन के विरुद्ध जनता का क्रोध फूट पड़ा और कई रियासतों में लगातार ऐसी घटनाएं हुईं जिन्हें गांधी जी कतई पसन्द नहीं कर सकते थे। त्रावणकोर और राजकोट में तथा उड़ीसा की रियासतों में गांधी जी को भान हुआ कि सत्याग्रह के उनके सिद्धान्तों का सख्ती के साथ पालन नहीं हो रहा है। अतः उन्होंने रियासती जनता के आन्दोलन के सम्बन्ध में एक नई कार्यविधि निकाली। इस नई विधि की व्याख्या उन्होंने इन शब्दों में की

> "मेरा दृढ़ मत है कि अधिकारियों के साथ प्रत्यक्ष वार्ता आरम्भ करनी चाहिए। रियासती कांग्रेस वाले अभी तक अधिकारियों को सीधे सम्बोधित नहीं करते रहे हैं और न अधिकारी उन्हें सम्मुख सम्बोधन करते रहे हैं। फलतः दोनों के बीच खाई चौड़ी होती गयी है। किसी सत्याग्रही को यह कहना शोभा नहीं देता कि जब वे बात करेंगे तभी हम भी बात करेंगे। सत्याग्रही का पहला और आखिरी काम सदा यह होना चाहिए कि सम्मानजनक बातचीत शुरू करने का अवसर ढूंढे।

यह रियासती शासकों को यह बात बताने की कोशिश की थी कि रियासतों की जनता कांग्रेस के साथ है पर कांग्रेस नहीं चाहती कि जन आंदोलन खतरनाक रास्ता पकड़े। वस्तुतः कांग्रेस चाहती है कि

उन्हें काबू में रखें और एक रास्ते पर न चलें जो कुछ शासकों के लिए भी निरापद हो। दूसरे शब्दों में यह राजाओं का आह्वान था कि वे वामपक्षों के विरुद्ध कांग्रेस के साथ आयें न कि कांग्रेस के विरुद्ध संघ जा का साथ दें।

बार-बार इस प्रकार वामपंथी तत्वों को काबू में रखने की कोशिश करते हुए मंत्रि-मंडल के गठन द्वारा प्राप्त अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने का प्रयास करते हुए और साथ ही रियासती जनता की नई जागृति का इस्तेमाल देसी नरेशों के साथ समझौता करने के लिए करते हुए कांग्रेस नेताओं ने संविधान की संघ सम्बन्धी धाराओं का विरोध करने पर ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने मांग की कि भारत का भावी संविधान तैयार करने के लिए एक नई जनतांत्रिक विधान निर्मात्री परिषद आयोजित की जाये। भावी संविधान के और खास कर उसके संघीय अंग के सवाल को लेकर ही कांग्रेस और अंग्रेजों में मतभेद की खाई सबसे चौड़ी थी।

ध्यान देने की बात यह है कि इसी सवाल पर कांग्रेस के वाम और दक्षिण पक्षों के बीच भी मतभेद की खाई सबसे चौड़ी थी। संघ का विरोध करते हुए गांधी जी ने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि जहां तक उनका सवाल है वह ब्रिटिश सरकार से बातचीत के लिए तैयार हैं। 'न्यूयार्क टाइम्स' के संवाददाता श्री स्टील के साथ एक मुलाकात में गांधी जी ने यहां तक कहा कि

> अगर औपनिवेशिक पद की इस तरह परिभाषा कर दी जाये कि भारत उसके अन्दर आ जाये और भारत अगर इंग्लैंड के साथ सम्मानपूर्ण समझौता कर सके तो मैं शब्दों पर झगड़ा नहीं करूंगा। अगर इस सम्मानपूर्ण समझौते के लिए ब्रिटिश राजनेता औपनिवेशिक पद शब्द का इस्तेमाल करना ही सबसे सुविधाजनक समझें तो मुझे कोई एतराज न होगा।

पर श्री स्टील ने प्रश्न किया कि कांग्रेस में सुभाष बोस और उनकी जमात के लोग हैं जो ब्रिटिश साम्राज्य से बाहर, पूर्ण स्वतंत्रता चाहते हैं।

गांधी जी ने जवाब दिया कि प्रश्न सवाल मतदाताओं का है। सुभाष बाबू और हम मत की भिन्न-भिन्न धाराओं का प्रचार करें पर मैं यह नहीं मानूंगा कि इस बारे में मुझमें और उनमें कोई मतभेद है।

वैदिक मतभेद सबसे ज्यादा कहीं न होकर मुख्य राजनीतिक सामरिक सवाल पर कांग्रेस की चर्चा के मतभेद सिद्ध हुए—जैसे सवाल था निर्विवाद रूप से १९१४ से चले आ रहे थे और जिन्होंने कांग्रेस को दक्षिण और वाम पक्षों में बांट दिया था। १९३८-३९ में जब कांग्रेस पहला आम चुनाव लड़ रही थी तो एकता के तकाजे ने इस मतभेद को दबा दिया था। कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों की स्थापना होने से प्रान्तीय मंत्रि मंडलों तथा आम कांग्रेस-जनों में बड़े पैमाने पर टकराव होने लगी। अब दक्षिण-पंथी नेताओं ने सोचा कि अब मिजाज-मुस्लहित का दौर खत्म हो जाना चाहिए और सिद्धान्त का दौर शुरू हो जाना चाहिए। यही कारण था कि त्रिपुरी कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए पट्टाभि सीतारमैय्या और सुभाष बोस में प्रतिद्वंद्विता हुई। यह केवल व्यक्तिगत संघर्ष न था।

जब सुभाष बाबू ने दूसरी बार फिर खड़ा होना चाहा तो सरदार पटेल राजेन्द्र प्रसाद जमुनालाल बजाज जयरामदास दौलतराम शंकर राव देव भूलाभाई देसाई और कृपलानी ने एक संयुक्त वक्तव्य निकाल कर उनसे अपने निर्णय पर फिर से विचार करने और डॉ॰ पट्टाभि के निर्विरोध चुने जाने की अपील की।

सुभाष बोस ने उत्तर दिया

अध्यक्ष पद के लिए वामपंथी उम्मीदवार खड़ा करने की खास अहमियत है। ऐसा आम ख्याल है कि अगले साल ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस के दक्षिणपंथी नेताओं में संघ-योजना के बारे में समझौता होने की उम्मीद है। इसीलिए दक्षिणपंथी नेता ऐसा वामपंथी अध्यक्ष नहीं चाहते जो रोड़ा बने और समझौते के उनके मार्ग में बाधा डाले। ऐसी स्थिति में जरूरी है कि कांग्रेस अध्यक्ष ऐसा ही व्यक्ति हो जो संघ-योजना का कट्टर विरोधी हो।

सुभाष बोस की जीत मेरी हार है उन्होंने कांग्रेस प्रतिनिधियों के फैसले को उलटवाने के मकसद से जनमत तैयार करने के लिए इस्तेमाल किया। कांग्रेस कार्यसमिति के बारह सदस्यों — सरदार पटेल मौलाना आजाद राजेन्द्र प्रसाद सरोजिनी नायडू भूलाभाई देसाई, पट्टाभि सीतारम्मैया शंकरराव देव हरेकृष्ण महताब कृपालानी जैरामदास जमनालाल बजाज और गफ्फार खां ने इस्तीफा दे दिया। उन्होंने एक संयुक्त पत्र लिखा। लोगों का यह विश्वास था कि इस पत्र के मसविदे को स्वयं गांधी जी ने तैयार किया था। इसमें उन्होंने कहा

> 'हमारा ख्याल है कि अब वक्त आ गया है जब देश के सामने एक सुस्पष्ट नीति हो ऐसी नीति जो कांग्रेस के भीतर की विभिन्न असंगत जमातों के समझौते पर आधारित न हो। अतः उचित यही है कि आप बहुमत के विचार का प्रतिनिधित्व करनेवाली एक जैसी विचारधारा की कार्यसमिति चुनें।

जवाहरलाल नेहरू ने संयुक्त त्यागपत्र पर हस्ताक्षर नहीं किया पर उन्होंने भी कार्यसमिति से इस्तीफा दे दिया। एक अलग पत्र में उन्होंने बताया कि

> "मैंने समझौता कराने की पूरी कोशिश की। मैंने अध्यक्ष सुभाष बोस पर जोर डाला कि वह चुनाव के पहले के अपने वे आरोप वापस ले लें जो उन्होंने दक्षिण-पंथियों द्वारा संघ के सवाल पर ब्रिटिश सरकार से समझौता किये जाने के बारे में लगाये थे।

कार्यसमिति से तेरह सदस्यों का इस्तीफा कांग्रेस के अब तक के सबसे ज्यादा आन्तरिक संकट का प्रारम्भ था। संकट का अन्त दक्षिण पंथियों की जीत में हुआ।

त्रिपुरी अधिवेशन में प्रतिनिधिगण अत्यधिक आवेशित और विभिन्न थे। दक्षिणपंथी नेताओं ने इसका पूरा फायदा उठाया। उन्होंने एक प्रस्ताव पास किया जिसके अनुसार सुभाष बोस को गांधी जी के परामर्श से कार्यसमिति के सदस्यों को मनोनीत करना था।

है। वस्तुतः मैं तो अपने चारों ओर आज किसी अहिंसक आन्दोलन की तैयारी नहीं वरन् हिंसा के विस्फोट की तैयारी देख रहा हूं भले ही यह अनजाने में या बिना किसी इरादे के वर्षों में किया जा रहा हो।

यह प्रस्ताव तीव्र सांगठनिक संघर्ष का श्रीगणेश बन गया। सुभाष बाबू तथा कांग्रेस की कार्यकारिणी समितियों के कई वाम पदाधिकारियों और सदस्यों ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के प्रस्ताव पर ९ जुलाई को विरोध दिवस मनाने का फैसला किया। कार्यसमिति ने सुभाषचन्द्र बोस को तीन वर्ष के लिए बंगाल कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष पद के लिए अयोग्य करार दिया।

स्वभावतः दक्षिण और वाम पक्ष में जोरदार भिड़न्त शुरू हो गयी। लेकिन इसके पहले कि लोगों को कांग्रेस से बड़े पैमाने पर निकाला जाना शुरू कर दिया जाता एक और ही तूफान फट पड़ा। हिटलर ने पोलैंड पर हमला बोल दिया। ब्रिटेन ने जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी और भारत को भी युद्ध घोषणा में शरीक कर लिया गया। भारत का मत लिये बिना ही उसे युद्ध में घसीट लेने पर देश भर में अंग्रेजों के खिलाफ रोष की लहर फैल गयी। ऐसा लगा कि यह रोष विस्फोटक रूप धारण कर लेगा। तभी वायसराय ने यह घोषणा की कि युद्ध के कारण भारत की सुरक्षा खतरे में पड़ गयी है। अतः एक साथ ही कई आर्डिनेन्स जारी कर दिये गये।

कार्यसमिति के साथ विवाद

अहिंसा-भक्त होते हुए भी गांधी जी ने प्रथम विश्व युद्ध में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की ओर से फौजी रंगरूटों की भर्ती करने का काम किया था। नया युद्ध छिड़ते ही यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि युद्ध के सम्बंध में गांधी जी का रुख बदला है या अब भी वही है। एक प्रमुख कांग्रेस-जन ने गांधी जी से यही सवाल पूछा। २५ सितम्बर १९३९ को इसका जवाब देते हुए गांधी जी ने कहा

> यह युद्ध मुझे पहले से भी अधिक लोमहर्षक और घृणास्पद मालूम होता है। जितनी बेचैनी मैं आज महसूस करता हूं उतनी पहले कभी नहीं हुई थी। लेकिन बढ़ी-बढ़ी लोमहर्षकता मुझे फौजी रंगरूट भर्ती करनेवाला स्वनियुक्त सार्जेंट बनने से जो मैं पिछले युद्ध में था मुझे रोकेगी। फिर भी यह बात चाहे अजीब ही लगे पर मेरी पूरी हमदर्दी मित्र राष्ट्रों के साथ है। कोई चाहे या न चाहे पर यह युद्ध पश्चिम द्वारा विकसित किए गये जनतंत्र और तानाशाही के जिसकी प्रतिमूर्ति हिटलर है बीच युद्ध का रूप धारण करता जा रहा है।

इससे ऐसा भ्रम होता कि हिटलर के प्रति गांधी जी का रुख कड़ा न था। वह हिटलर की जीत चाहते थे। लेकिन साथ ही वह अंग्रेजों को फौजी सहायता नहीं देना चाहते थे क्योंकि वह प्रथम विश्व युद्ध के दिनों के मुकाबले में अब अधिक अहिंसक बन गए थे। पर दरअसल बात ऐसी न थी।

प्रथमतः गांधी जी ने प्रथम विश्व युद्ध में फौजी रंगरूट भर्ती करने का जो काम किया था वह असल में वैयक्तिक कार्य न था वह तो समूचे भारतीय पूंजीवादी वर्ग द्वारा अपनायी गयी नीति का अभिन्न अंग था। अमरीका स्थित गदर पार्टी और आतंकवादी कहे जाने वाले थोड़े से क्रांतिकारियों को छोड़ कर राष्ट्रीय आंदोलन के पूरे नेतृत्व ने ब्रिटेन को युद्ध में मदद देने और साथ ही उससे उत्तरदायी शासन की मांग करने की नीति अपनायी थी।

दूसरे गांधी जी ने यह स्वीकार किया था कि फौजी रंगरूट भर्ती करने का जो काम वह कर रहे थे उसके साथ स्वराज हासिल करने का राजनीतिक उद्देश्य भी था। शुरू में हम गांधी जी के इस मत का हवाला दे चुके हैं कि "स्वराज प्राप्त करने का सबसे आसान और सीधा रास्ता साम्राज्य की रक्षा में हाथ बंटाना है।"

तीसरे प्रथम और द्वितीय विश्व युद्धों के बीच के काल में भारतीय पूंजीपति वर्ग ने भारी बल संचित कर लिया था। वह प्रांतीय स्वायत्तता प्राप्त कर चुका था। सात प्रांतों में कांग्रेस के ही मंत्रिमंडल बने हुए थे। पर पूंजीपति वर्ग और शक्ति प्राप्त करना चाहता था। इसलिए एक ओर वह जन-आंदोलन का दबाव डालने और दूसरी ओर समझौते की बातचीत करने की नीति अपनाये हुए था।

युद्ध के प्रति कांग्रेस के रुख के पीछे भी यही रणनीति थी। वह पिछले विश्व युद्ध की तरह इस बार अंग्रेजों के युद्ध प्रयास को बिना शर्त समर्थन प्रदान करने के लिए तैयार न थी। साथ ही उसने यह भी स्पष्ट कर दिया कि केन्द्र में सत्ता की उसकी मांग कम-से-कम युद्ध के बाद मान लेने का वादा किया जाये तो वह अंग्रेजों को हर तरह का समर्थन देने को तैयार है।

पूंजीवादी या जमींदार नेतृत्व में चलने वाली अन्य पार्टियों और संगठनों का जैसे मुस्लिम लीग हिन्दू महासभा और लिबरलों आदि का भी यही रुख था।

गांधी जी के बदले हुए रुख में समूचे पूंजीवादी वर्ग और फलतः कांग्रेस की इस बदली हुई स्थिति का प्रतिबिम्ब था। युद्ध के प्रति

कामहर्षक प्राप्त होने का रहस्य यह था कि यह वर्ग जिसका गांधी जी नेतृत्व करते थे पहले से अधिक असहयोगी था और अब अंग्रेजों के साथ बात में उन्हें अपने समर्थन से वंचित करके उनके ऊपर दबाव डालने की कोशिश कर रहा था।

श्री तेंदुलकर के कथनानुसार युद्ध के प्रति गांधी जी और कांग्रेस कार्यसमिति के रुखों में पहले कुछ महीनों में बुनियादी मतभेद था। गांधी जी बिना शर्त अंग्रेजों को समर्थन देने के पक्ष में थे। पर कार्यसमिति कुछ शर्तों पर ही समर्थन करने को तैयार थी। दूसरी ओर, शर्तें मान लेने पर कार्यसमिति फौजी रंगरूटों की भर्ती आदि तक का काम करने के लिए तैयार थी पर गांधी जी नैतिक और अहिंसक समर्थन मात्र के लिए ही तैयार थे।

इस मतभेद का कारण प्रकटतः अहिंसा के सिद्धान्त के प्रति रुखों की भिन्नता थी। कार्यसमिति केवल ब्रिटिश सरकार-विरोधी संघर्ष में ही अहिंसा का सिद्धान्त मानने को तैयार थी। यह साम्प्रदायिक दंगों का मुकाबला करने या विदेशी आक्रमण का विरोध करने में केवल अहिंसक साधनों तक अपने को सीमित रखने के लिए तैयार न थी। लेकिन गांधी जी का कहना था कि आन्तरिक अमन और बाहरी हमले के प्रतिरोध जैसी समस्याओं का भी अहिंसा से निपटारा चाहिए।

इन भिन्न रुखों के कारण युद्ध के प्रथम महीनों में कांग्रेस के अन्दर काफी तनाव बढ़ गया और आन्तरिक संकट पैदा हो गया। अगर गांधी जी और उनके जीवनी-लेखक की बात मानी जाय तो सरदार पटेल और चक्रवर्ती राजगोपालाचारी जैसे गांधी जी के निकटतम सहयोगियों और सहायकों का गांधी जी के साथ इसलिए मतभेद था कि वे अहिंसा के नैतिक सिद्धान्त को उतनी दूर तक लागू करने के लिए तैयार न थे जितना कि गांधी जी चाहते थे।

लेकिन जरा हम इस पर गौर करें कि यह मतभेद किस तरह विकसित हुआ। ऐसा करने पर हम पायेंगे कि इस नैतिक दिखने वाले विवाद के पीछे एक ठोस राजनैतिक विचार था। हम यह भी देखेंगे कि गांधी जी और कार्यसमिति के रुखों के बीच एक प्रकार का काम

विभाजन हो चुका था। परन्तु इस बात पर गौर कीजिए कि आपका युद्ध में किस तरह आरम्भ हुआ फिर कुछ दिनों के लिए सिमट गया फिर और तीव्र रूप लेकर छिड़ा और अन्त में फिर सिमट गया।

युद्ध घोषणा के बाद कार्यसमिति की जो पहली बैठक हुई, उसमें ही इसके तौर पर विवाद शुरू हुआ। जैसा कि गांधी जी ने बताया मुझे यह देख कर दुख हुआ कि अंग्रेजों को जो भी समर्थन देना है, वह बिना शर्त दिया जाय ऐसा सोचने वाला अकेला मैं ही था। बात यह थी कि कार्यसमिति ने जिस परिस्थिति में गांधी जी की सलाह मानने से इनकार कर दिया वह यह थी कि युद्ध अभी छिड़ा ही था और यह साफ नहीं हुआ था कि दोनों पक्षों तथा गैर-फासिस्ट शिविर के प्रत्येक देश की क्या प्रतिक्रिया होगी अतः कार्यसमिति अपने हाथ बांधना नहीं चाहती थी जिससे कि अंग्रेजों के साथ कोई समझौता वार्ता होने पर दिक्कत पेश आये। अगर वह बिना शर्त समर्थन करने की बात करती या पूर्णतया अहिंसा के आधार पर, शर्त के साथ या बिना शर्त समर्थन देने के लिए तैयार होती तो दोनों ही हालतों में उसे कठिनाई का सामना करना पड़ सकता था।

पर बाद की घटनाओं से पता चला कि अंग्रेज कांग्रेस द्वारा प्रस्तुत आधार पर उसके साथ बातचीत और समझौता करने के लिए अभी बिल्कुल ही तैयार न थे। भारत सचिव लार्ड जेटलैंड और वायसराय लार्ड लिनलिथगो के बयानों से साफ हो गया था कि कांग्रेस की आत्म निर्णय की मांग के उत्तर में अंग्रेज गांधी जी के शब्दों में अपने "चार सौ साम्राज्य के चार स्तम्भों—यूरोपियन हितों फौज देशी नरेशों और साम्प्रदायिक फूट का सहारा ले रहे थे। मुस्लिम लीग खास तौर से अधिकाधिक जोर पकड़ती जा रही थी।

अतः कांग्रेस कार्यसमिति को पक्का यकीन था कि बिना और अधिक दबाव डाले अंग्रेज उसकी मांग नहीं मानेंगे। इसलिए पहला कदम यह उठाया गया कि प्रांतीय कांग्रेस मंत्रिमंडलों को इस्तीफा देने का आदेश दे दिया गया। इसके बाद हर हालत का मुकाबला करने के वास्ते देश को तैयार करने के लिए दूसरे कदम उठाने की बात थी। इस

परिस्थिति में गांधी जी का अहिंसात्मक रुख ब्रिटिश और अन्य मित्र राष्ट्रों से उनकी यह अपील कि वे अहिंसा द्वारा नाजियों का मुकाबला करें, कार्यसमिति के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। क्योंकि जनता की युद्ध-विरोधी भावना को बड़ी तेजी से बढ़ रही थी और भी तेज की जा सकी। ऐसी परिस्थितियां तैयार की गयी जिनसे अंग्रेजों को यह मालूम हो जाय कि युद्ध प्रयास को जारी रखना उनके लिए आसान न होगा।

अतः गांधी जी और कार्यसमिति में कोई झगड़ा नहीं था। बल्कि कार्यसमिति ने कांग्रेस-जनों से खास तौर पर और जनता से आम तौर पर अपील की कि गांधी जी की हिदायतों को मानते हुए वे संघर्ष की तैयारी करें। १९३४ के बम्बई अधिवेशन के बाद गांधी जी ने १९४ में कांग्रेस के रामगढ़ अधिवेशन में पहली बार भाषण किया। इस अधिवेशन में मुख्य प्रस्ताव यह पास किया गया कि ब्रिटिश सरकार की नीति को मद्देनजर रखते हुए कांग्रेस और उसके साथ के लोग धन-जन या सामान देकर युद्ध में मदद नहीं दे सकते।

अपने भाषण में गांधी जी ने विस्तारपूर्वक बताया कि किस तरह युद्ध-विरोधी संघर्ष को संगठित किया जायगा और चलाया जायगा। रामगढ़ अधिवेशन के खत्म होने के फौरन बाद गांधी जी ने "हर कांग्रेस कमिटी सत्याग्रह कमिटी बन जाये" का नारा दिया। उन्होंने तफसील के साथ हिदायतें जारी कीं कि हर कांग्रेस कमिटी और कांग्रेस-जन किस तरह सत्याग्रही के रूप में काम करेगा।

परन्तु अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति ने पलटा खाया। मई-जून १९४ में मित्र राष्ट्र कई लड़ाइयों में हार गये। पूरे पश्चिमी योरप पर नाजियों का कब्जा हो गया। स्वयं ब्रिटेन की हालत डांवाडोल हो गयी। चैम्बरलेन को हटाकर चर्चिल प्रधान मंत्री बने। यह खयाल पैदा होने लगा कि क्या इन घटनाओं से अंग्रेजों की भारत-नीति बदलेगी। गांधी जी ने खुद कहा कि "जब तक पश्चिम में भयानक नरसंहार जारी है और शान्तिपूर्ण घरों को नष्ट किया जा रहा है मैं मौजूदा ब्रिटेन को शान्ति और सम्मान के साथ समाप्त करने के लिए कोई कदम उठा न सकूंगा।

ऐसी हालत में यह लाजिमी था कि गांधी जी और कार्यसमिति का मतभेद युद्ध के आरंभिक दिनों के मुकाबले में अधिक तीव्र रूप धारण कर लेता। कार्यसमिति के बहुमत का ख्याल था कि ब्रिटेन ऐसी आफ्त में फंस गया है कि उसके राजनेता कांग्रेस के साथ समझौता करने के लिए बाध्य होंगे। अगर ऐसा हुआ तो कांग्रेस में एक ऐसे आदमी का नेतृत्व होना असुविधाजनक होगा जो यह कहता है कि हम तो केवल अहिंसात्मक समर्थन ही प्रदान कर सकते हैं।

कार्यसमिति में एक लम्बी बहस हुई। गांधी जी भी उसमें शामिल थे। बहस के अन्त में २१ जून को यह घोषणा की गयी कि अहिंसा को राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के सवाल पर भी लागू करने के लिए कार्यसमिति तैयार नहीं है। अतः फैसला किया गया कि अहिंसात्मक संघर्ष के लिए देश को तैयार करने के उत्तरदायित्व से गांधी जी को मुक्त किया जाय।

इसके बाद ही पूना में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक हुई। इसके अध्यक्ष मौलाना आजाद ने कहा

> कांग्रेस राजनीतिक संगठन है जिसने देश की राजनीतिक आजादी हासिल करने का बीड़ा उठाया है। उसका काम विश्व शांति सगठित करना नहीं है। ईमानदारी की बात यह है कि हम उतनी दूर तक नहीं जा सकते जितनी दूर तक कि गांधी जी जाना चाहते हैं।

इसी अधिवेशन में प्रसिद्ध पूना प्रस्ताव पास किया गया। इस प्रस्ताव में कहा गया कि कांग्रेस बाहरी हमले से देश का बचाव करने के लिए राष्ट्रीय सरकार म शामिल होने को तैयार है बशर्ते ब्रिटिश सरकार यह घोषणा कर द कि वह युद्ध के बाद भारत की आजादी को स्वीकार कर लेगी।

पर अंग्रेजों से इस प्रस्ताव का प्रत्याशित उत्तर नहीं प्राप्त हुआ। जुलाई के पूना प्रस्ताव का जवाब अंग्रेजों ने अपने अगस्त प्रस्ताव के रूप म दिया। उसम वायसराय ने कहा कि नया संविधान भारतीय खुद तैयार कर लेकिन दो शर्तों के साथ — एक यह कि अंग्रेजों के दायित्व पूरे किये जायं दूसरे अल्पमत को दबाया न जाय। स्पष्ट था कि अंग्रेज

यार शब्दों वाली अपनी पुरानी नीति को चारी रखे हुए थे। अतः, जैसा कि श्री तेन्दुलकर ने लिखा है कांग्रेस को ऐसा लगा कि उसने "बुरी तरह धोखा खाया है। उसने गांधी जी की खुली अवहेलना की थी इसमें भारत की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के मामले में अहिंसा सिद्धांत को लागू करने में अपनी असमर्थता प्रकट की थी और युद्ध प्रयास में पूर्ण सहायता देने की अपनी शर्तें पेश की थीं।" ब्रिटिश सरकार द्वारा कांग्रेस-प्रस्ताव के ठुकरा दिये जाने से गांधी जी और कार्यसमिति का विवाद फिर हल हो गया। कार्यसमिति ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की असाधारण बैठक बुलायी। इसमें अध्यक्ष मौलाना आजाद ने कहा

"इन घटनाओं से मजबूर होकर हमने महात्मा गांधी से कांग्रेस का सक्रिय नेतृत्व ग्रहण करने का फिर अनुरोध करने का फैसला किया है। आपको यह सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि उन्होंने हमारा अनुरोध स्वीकार कर लिया है। क्योंकि अब उनके और कार्यसमिति के बीच कोई मतभेद नहीं रह गया है।

इसके बाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी ने गांधी जी द्वारा तैयार प्रस्ताव पास किया। इसमें ऐलान किया गया कि—

कमिटी केवल स्वराज संघर्ष में ही नहीं बल्कि जहां तक व्यावहारिक हो स्वतंत्र भारत में भी अहिंसा की नीति एवं व्यवहार पर दृढ़ विश्वास रखती है।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के इस प्रस्ताव से ही १९४०–४१ के युद्ध-विरोधी व्यक्तिगत सत्याग्रह का सूत्रपात हुआ। आचार्य विनोबा भावे ने सत्याग्रह आरंभ किया। इसके बाद अन्य व्यक्तिगत सत्याग्रहियों ने जिनका चुनाव गांधी जी ने खुद किया था व्यक्तिगत सत्याग्रह किया। यह सिलसिला कुछ महीनों तक चलता रहा। इस प्रकार के सत्याग्रह ने ब्रिटेन के युद्ध प्रयासों में भारत के घसीटे जाने के खिलाफ राष्ट्र का विरोध भाव व्यक्त करने का काम किया। इससे अधिक कुछ करना अभीष्ट भी न था। गांधी जी ने अपने भाषणों और बयानों में यह स्पष्ट कर दिया कि जो संघर्ष छेड़ा गया है, वह स्वतंत्रता संग्राम नहीं है

बल्कि फिलहाल हमें बोलने और लिखने की पूर्ण-स्वतंत्रता से ही संतोष कर लेना चाहिए।" उन्होंने यह भी साफ शब्दों में कहा कि वह इस संघर्ष के विजयी होने की आशा नहीं करते थे। "हम एक ऐसी सत्ता का प्रतिरोध कर रहे हैं जो स्वयं एक कट्टर शत्रु के साथ जीवन-मृत्यु की लड़ाई लड़ रही है।

पर यह उल्लेखनीय है कि इसके कुछ ही महीने बाद दिसम्बर १९४१ में गांधी जी और कार्यसमिति में फिर टक्कर हुई। गांधी जी ने बम्बई प्रस्ताव (सितम्बर १९४) द्वारा सौंपी गयी जिम्मेदारी से मुक्ति पानी चाही और कार्यसमिति ने उनका आवेदन स्वीकार कर लिया। यह जिस परिस्थिति में हुआ उसका श्री तेन्दुलकर ने इस प्रकार वर्णन किया है

1 जून के मध्य में अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति ने सहसा पलटा खाया जर्मनी ने रूस पर हमला कर दिया। जुलाई में वायसराय की एक्जीक्युटिव कौंसिल को विस्तारित और राष्ट्रीय प्रतिरक्षा परिषद को गठित करने की घोषणा की गयी।

२ १९४१ की शरद ऋतु का अन्त आते-आते यह स्पष्ट हो गया कि राजनीतिक परिस्थिति को सुधारने के लिए और युद्ध म जनता का पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के लिए जल्दी-से जल्दी कुछ करना जरूरी है। जर्मन समाचार रूस में घुसे जा रहे थे और ऐसा लगता था कि जर्मन सेना निकट-पूर्व को भी पार करेगी। जापान न चीन में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी और युद्ध में अन्तिम रूप से कूद पड़ने की तैयारी कर रहा था। भारत में विरोध-भावना और असन्तोष को नियंत्रण में लाना सामरिक दृष्टि से अत्यावश्यक हो गया था।

३ २१ दिसम्बर १९४१ को कार्यसमिति बारदोली में बैठी। इससे पहले की उसकी बैठक पूरे चौदह महीना पहले हुई थी। कार्यसमिति इस अवधि का लेखा-जोखा लेना चाहती थी। जापान युद्ध में कूद चुका था। अतः कार्यसमिति को खतरनाक स्थिति का यथार्थता-पूर्ण मूल्यांकन करना था।

उसने खतरनाक स्थिति का यथार्थता-पूर्ण मूल्यांकन किया। उसके परिणामस्वरूप गाँधी जी ने उसके पास एक खत लिखा। इस खत में उन्होंने बम्बई प्रस्ताव की अपनी व्याख्या एवं अन्य लोगों द्वारा की गयी व्याख्या के अन्तर पर आश्चर्य प्रकट किया। इस बारे में गांधी जी ने लिखा

> "बम्बई प्रस्ताव को फिर से पढ़ने के बाद मुझे पता चला कि भिन्न मत रखने वाले सदस्यगण सही थे और मैंने उसका जो अर्थ समझा था वह अर्थ उसके शब्दों से नहीं निकल सकता था। इस गलती का पता लगने के बाद मेरे लिए असंभव हो गया है कि युद्ध-विरोध के संघर्ष में ऐसे आधार पर जिसमें अहिंसा अपरिहार्य न होगी काग्रेस का मैं नेतृत्व करूं। अतः बम्बई प्रस्ताव ने मेरे ऊपर जो उत्तरदायित्व सौंपा था उससे आप लोग मुझे कृपया मुक्त कर दें।

कहने की जरूरत नहीं कि कार्यसमिति ने फौरन उनका सुझाव मान लिया और इस तरह सरकार के चाहने पर उसके द्वारा समझौता वार्ता शुरू किये जाने के लिए रास्ता फिर खोल दिया गया।

४ घटनाएं बिजली की सी तेजी से आगे बढ़ रही थी। मित्र राष्ट्र एशिया और योरप दोनों ही जगहों में हार रहे थे बर्मा में ब्रिटिश फौज के पांव उखड़ गये इसका असर चीन में महसूस किया गया। फरवरी १९४२ में मार्शल च्यांग काई-शेक और मैडम च्यांग काई-शेक दिल्ली आये और ब्रिटेन तथा भारत से खुली अपील की। मार्शल च्यांग काई-शेक ने शासकों से कहा कि वे भारतीयों को राजनीतिक स्वतंत्रता प्रदान करें।

५ इन सारी घटनाओं ने अंग्रेजों को समझौता-वार्ता शुरू करने के लिए मजबूर कर दिया।

७ मार्च १९४२ को जब रंगून पर जापानियों का कब्जा हो गया तो ऐसा लगा कि जापानी जल्द ही बंगाल और मद्रास में भी पहुंच जायेंगे। ११ मार्च को चर्चिल ने घोषणा की कि युद्धकालीन मंत्रिमंडल ने भारत के सम्बंध में एक योजना तैयार की है और सर स्टैफोर्ड क्रिप्स यह पता लगाने के लिए भारत जायेंगे कि इस योजना को युक्तियुक्त एवं व्यावहारिक मंजूरी प्राप्त होगी या नहीं इस तरह समूचे हृदय और शक्ति के साथ जापान से अपना बचाव करने में लग जाने के लिए भारत को सहायता प्रदान की जायगी।

११ 'भारत छोड़ो' आंदोलन और उसके बाद

पिछले अध्याय के विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि गांधी जी और कांग्रेस कार्यसमिति का मतभेद वस्तुतः राष्ट्रीय प्रतिरक्षा में हिंसा के उपयोग की नैतिकता अथवा अनैतिकता को लेकर न था बल्कि इस बात को लेकर था कि अंग्रेजों से किस तरह बातचीत की जाय और उन पर किस तरह दबाव डाला जाय।

गांधी जी विशुद्ध अहिंसा की हिमायत कर रहे थे। वह अहिंसक ढंग से युद्ध प्रयास का मुकाबला करना चाहते थे। यह अंग्रेजों के ऊपर दबाव डालने का कारगर तरीका सिद्ध हुआ। अतः कार्यसमिति संघर्ष की धमकी देने या संघर्ष संगठित करने की आवश्यकता पड़ने पर सदा अपने को गांधी जी के नेतृत्व में सौंप देती थी।

दूसरी ओर, जब कभी अंग्रेजों से बातचीत का मौका आता कार्यसमिति यह "यथार्थतापूर्ण स्थिति" अपना लेती कि बातचीत केवल सत्ता हस्तान्तरित किये जाने की शर्त पर ही चलायी जा सकती है और इसी आधार पर अंग्रेजों के साथ भारत सहयोग कर सकता है। जब-जब ऐसे मौके आते गांधी जी युद्ध नेतृत्व से अलग हो जाने की मांग करते और कार्यसमिति फौरन उनकी मांग मान लेती। इस तरह एक बहुत ही शानदार तालमेल मौजूद था। यह तालमेल पूंजीपति वर्ग की मौलिक रणनीति के लिए सदा सोलह आने उपयुक्त था।

कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों के बीच आगे जो बातचीत चली वह गांधी जी और बाकी कांग्रेस नेताओं के मतभेद और समझौते का सबसे ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करती है।

कार्यसमिति समझौता वार्ता चला सके इसके लिए भी गांधी जी ने १९४१ के अन्त में और १९४२ के आरंभ में नेतृत्व का त्याग किया। औपचारिक तौर पर कांग्रेस अध्यक्ष और कार्यसमिति समझौते की बातचीत चलाते थे पर हर कदम पर गांधी जी की सलाह ली जाती थी। औपचारिक तौर पर गांधी जी समझौता-वार्ता से अलग रहते थे लेकिन कांग्रेस की ओर से समझौता करने वालों की नीति निर्धारित करने में गांधी जी की ही बात निर्णायक होती थी। इसके अलावा ज्यों ही समझौते की बातचीत टूट गयी और यह स्पष्ट हो गया कि अंग्रेज कांग्रेस की अल्पतम मांगों को भी मानने के लिए तैयार नहीं है, त्यों ही गांधी जी युद्ध-विरोधी और अंग्रेज-विरोधी जन-आंदोलन के नेता के रूप में सबसे आगे आ खड़े हुए। गांधी जी ही प्रसिद्ध "भारत छोड़ो" नारे के प्रणेता थे।

अंग्रेजों के प्रति गांधी जी का रुख जो १९४०-४१ में था और जो १९४२ में देखा गया उनके अन्तर से कोई भी आदमी चकित हुए बिना नहीं रह सकता। १९४०-४१ में उनके नेतृत्व में जो संघर्ष छेड़ा गया था उसके बारे में गांधी जी ने स्पष्ट कहा था कि यह स्वतंत्रता संग्राम नहीं है। उन्होंने पूछा था

> जिनकी आजादी युद्ध खतरे में हो उनसे भला आजादी के लिए कैसे कहा जा सकता है? अगर यह मान भी लें कि कोई देश दूसरे देश को आजादी दे सकता है तो ब्रिटेन के लिए ऐसा करना संभव नहीं है। जो खुद खतरे में हो वह दूसरे को क्या बचायेगा? लेकिन अगर वे आखिरी दम तक आजादी के लिए लड़ते हैं और उनमें जरा भी विवेक है तो उन्हें हमारी बोलने की स्वतंत्रता स्वीकार करनी चाहिए।

१९४२ में उनकी राय कुछ और ही थी। उन्होंने कहा

मेरा दृढ़ मत है कि अंग्रेजों को व्यवस्थित ढंग से चले जाना चाहिए और वह जोखिम नहीं उठाना चाहिए जो उन्होंने सिंगापुर, मलाया और बर्मा में उठाया। अगर वे ऐसा करते हैं तो यह उच्च स्तर के साहस का परिचय देना होगा मानवीय सीमाओं को कबूल करना होगा और भारत के साथ न्याय करना होगा।

उद्देश्यों में कितना बड़ा अन्तर है? एक ओर भाषण की आजादी और केवल भाषण की आजादी और दूसरी ओर "तत्काल स्वतंत्रता।" साथ ही संघर्ष के तरीकों का अन्तर भी उल्लेखनीय है। १९४ ४१ में गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह पर जोर दिया था। जन संघर्ष की बात उन्हें सख्त नापसंद थी। "क्या एक राजदूत ही पूरे देश का प्रतिनिधित्व नहीं करता —उन्होंने उस समय कहा था।

लेकिन १९४२ में उनका सब कुछ और ही था। उनके जीवन में पहली बार ही ऐसा हुआ कि हिंसा का सहारा लेने पर उन्होंने आम जनता की भर्त्सना नहीं की। पहली बार उन्होंने कहा कि "जन-समुदाय द्वारा हिंसा के जो भी कार्य हुए, वे सरकार की पाशविक हिंसा की स्वाभाविक प्रक्रिया थे।

इस बात के भी संकेत मिलते हैं कि ८ अगस्त १९४२ के पूर्व के दिनों में गांधी जी ने यह सोच लिया था कि "भारत छोड़ो" आंदोलन छेड़ने पर जनता का स्वतःस्फूर्त विद्रोह होगा। जिन्दगी में पहली बार उन्होंने एक ऐसे जन-संघर्ष की बात की जिसमें किसान केवल ब्रिटिश सरकार के ही खिलाफ नहीं बल्कि जमींदारों के खिलाफ भी लाखों की संख्या में उठ खड़े होंगे। उदाहरण के लिए, अमरीकी पत्रकार लुई फिशर से उन्होंने कहा था कि किसान अपना संघर्ष करबन्दी से आरंभ करेंगे लेकिन करबन्दी से किसानों में यह सोचने का साहस पैदा होगा कि उनके अन्दर स्वतंत्र कार्रवाई करने की क्षमता है। उनका अगला कदम होगा जमीन पर कब्जा कर लेना।

"हिंसापूर्वक?" लुई फिशर ने पूछा।

"हिंसा भी हो सकती है" गांधी जी ने जवाब दिया "लेकिन यह भी हो सकता है कि जमींदार सहयोग करें।"

"आप बड़े आशावादी मालूम होते हैं" फिशर ने टोका भी।

"वे मैदान से भाग कर सहयोग कर सकते हैं," गांधी जी ने कहा।

या वे हिंसापूर्ण प्रतिरोध संगठित कर सकते हैं, फिशर बोले।

"पन्द्रह दिनों के लिए अराजकता कायम हो सकती है पर मेरा ख्याल है कि हम शीघ्र ही उन पर काबू पा लेंगे" गांधी जी ने उत्तर दिया।

लेकिन यह नतीजा निकालना गलत होगा कि गांधी जी ने जनता के वास्तविक क्रान्तिकारी संघर्ष की परिकल्पना की थी। क्योंकि उन्होंने जमीन पर किसानों के कब्जा कर लेने और पन्द्रह दिनों तक अराजकता फैले रहने आदि की (उतने दिनों तक जब तक अंग्रेजों के वापस चले जाने की मांग को कार्यान्वित करने के संघर्ष का विचार जनता में फैलाते) बात तो की पर संगठित मजदूर वर्ग या किसानों की क्रान्तिकारी कार्रवाई छेड़ने या उसका नेतृत्व करने की गम्भीरता के साथ कोई तैयारी नहीं की।

इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के अधिवेशन में गांधी जी ने दो घंटे तक जो भाषण किया उसमें उन्होंने मजदूरों या किसानों को सम्बोधित करते हुए एक शब्द भी न कहा। भाषण के एक बड़े भाग में हिन्दू-मुस्लिम सवाल पर लीग और कांग्रेस के रुख की विवेचना की गयी फिर कुछ शब्द संघर्ष में भारी आत्म-त्याग की आवश्यकता के बारे में कहे गये। ("करो या मरो" का नारा) और तब पत्रकारों देशी नरेशों सरकारी कर्मचारियों फौजी सिपाहियों और छात्रों से खास तौर पर अपीलें की गयीं। प्रत्येक को यह बताया गया कि "भारत छोड़ो" आंदोलन की सहायता करने के लिए उन्हें क्या करना है। जनता की वास्तविक बहुसंख्या यानी मजदूरों और किसानों का गांधी जी के आंदोलन की तस्वीर में कोई स्थान नहीं

था। उनमें कोई खास भूमिका अदा नहीं करनी थी बस बलिदान के लिए, "करो और मरो" के लिए तैयार मौन भीड़ बने रहना था।

किसानों और मजदूरों से विशिष्ट रूप में कोई अपील न करना आकस्मिक भूल न थी यह कार्यसमिति के लिए तैयार गांधी जी की आदेशमाला से स्पष्ट हो जाता है। आदेशमाला में हड़ताल करने का आह्वान था लेकिन साथ ही लिखा गया था कि हड़ताल के दिन शहरों में न जलूस निकाले जायें न सभाएं की जायें। सभी लोग २४ घंटे उपवास करें और भगवान से प्रार्थना करें। हां उन्होंने गांवों में जलूसों और सभाओं की इजाजत दे दी थी जहां हिंसा या उपद्रव का कोई खतरा न हो।

यह भी ध्यान देने की बात है कि "आदेशमाला" में किसानों द्वारा जमींदार-विरोधी किसी कार्रवाई के छेड़े जाने की संभावना के विरुद्ध काफी एहतियातों का उल्लेख था। लुई फिशर को दी गयी मुलाकात की चर्चा करते हुए उन्होंने किसानों से कहा कि वे अपने संघर्ष को केवल सरकार के विरुद्ध ही सीमित रखें

> जहां जमींदारी प्रथा कायम है वहां जमींदार अगर रैयत का साथ दें तो मालगुजारी का उनका हिस्सा जो आपसी समझौते के द्वारा तय हो सकता है उनके हवाले किया जाय। लेकिन जमींदार अगर सरकार का साथ देना चाहता है तो उसे कोई कर अदा न किया जाय।

अतः कुछ लोगों का यह कहना कि गांधी जी ने "अगस्त क्रान्ति" का आयोजन एक सच्चे क्रान्तिकारी संघर्ष के रूप में किया था एकदम अकारण है। निस्सन्देह यह सच है कि इस संघर्ष में गांधी जी ने जनता की जंगी जन-कार्रवाइयों को रोकने के बारे में सबसे कम चिन्ता दिखाई थी। उन्होंने सोचा था और दरअसल यह चाहते भी थे कि संघर्ष में आम जनता बहुत अधिक स्फूर्ति पहलकदमी और संघर्षशीलता का परिचय दे। उन्हें इस बात की बहुत अधिक चिन्ता न थी कि जन-संघर्ष अहिंसा के उनके कठोर नियमों से विचलित हो जायेंगे जिनका सख्ती से पालन किये जाने पर उन्होंने पिछले आंदोलनों में जोर दिया था। लेकिन

क्या इसका अर्थ यह है कि वह संजय को ऐसे समझौताहीन जंगी जन संघर्ष की धारा में मोड़ना चाहते थे जो साम्राज्यवादियों और उनके भारतीय दलालों का सफाया कर देती।

तथ्य निर्विवाद रूप से सिद्ध करते हैं कि गांधी जी के मन में ऐसा कोई विचार न था। उनका यह ख्याल कि लड़ाई कुछ ही दिनों में समाप्त हो जायगी यह 'संक्षिप्त और द्रुत' संघर्ष होगा यही बताता है कि उन्होंने आशा की थी कि स्वतःस्फूर्त जन-संघर्ष सरकार को सुलह की बात करने के लिए मजबूर कर देगा। स्पष्ट ही उन्हें यह आशा थी कि अगर देश में थोड़े दिनों के लिए अराजकता भी फैल गयी तो ऐसी परिस्थिति सामने आ जायेगी जिसमें मित्र शक्तियों के नेता चल संघ र्षों पर और भी अधिक दबाव डालेंगे और उन्हें भारत की मांग मान लेने को मजबूर करेंगे।

यह उल्लेखनीय है कि अगस्त के दिनों से पहले के कुछ हफ्तों में गांधी जी के भाषणों और लेखों का एक बड़ा हिस्सा मित्र शक्तियों और उनके नेताओं को सम्बोधित करते हुए हुआ करता था। गांधी जी ने विदेशी संवाददाताओं को लगातार कई मुलाकातें दीं मार्शल च्यांग काई-शेक और राष्ट्रपति रूजवेल्ट को खत लिखे रूस और चीन को बचाने की आवश्यकता की बारम्बार चर्चा की विदेशी अखबारों से और उनके जरिए विश्व से विशेष अपील की और अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के अपने भाषण में यह स्पष्ट कर दिया कि वह मित्र राष्ट्रों से आशा करते हैं कि वे *भारत की ओर से ब्रिटेन पर दबाव डालेंगे।*

अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के बम्बई अधिवेशन के कुछ ही हफ्तों के अन्दर यह स्पष्ट हो गया कि उपरोक्त सारा हिसाब-किताब गलत था। जन-आंदोलन का ज्वार इतना प्रबल न था कि वह सरकारी यन्त्र को ठप कर देता। न मित्र राष्ट्रों के नेता ही ब्रिटिश सरकार पर ज्यादा दबाव डालने के लिए तैयार थे। श्री तेन्दुलकर लिखते हैं

सितम्बर के अन्त तक सरकार भारत छोड़ो आंदोलन की अहिंसात्मक और हिंसात्मक दोनों प्रकार की चेष्टाओं को कुचलने में प्रकटतः सफल हुई।

१९३२ की तरह गांधी जी ने फिर जेल के अन्दर अनशन आरंभ किया। इस बार भी गांधी जी ने एक नैतिक प्रश्न उठाया था। अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की अगस्त की बैठक के बाद सरकार ने जो दमनचक्र चलाया था उसे उचित सिद्ध करने के लिए उसने कुछ आरोप लगाये थे। इसे ही गांधी जी ने प्रत्यक्ष एक नैतिक सवाल बना लिया। पर यह नैतिक प्रश्न नहीं बल्कि राजनीतिक प्रश्न था। जनवरी १९४३ में वायसराय को लिखे अपने पत्र में गांधी जी ने अपने रुख का जो सारांश निरूपित किया था उससे यह साफ हो जाता है। उन्होंने लिखा था

> सारांश यह कि (१) अगर आप चाहते हैं कि मैं अकेले ही काम करूं तो मुझे विश्वास दिलाइए कि मैं गलती पर था फिर मैं प्रायश्चित करने को तैयार हूं। (२) अगर आप चाहते हैं कि मैं कांग्रेस की ओर से कुछ करूं तो मुझे कार्यसमिति के सदस्यों के साथ रखिए। मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि जिच की स्थिति दूर करने के लिए आप दृढ़-संकल्प होइए।

पर सरकार गांधी जी का सुझाव मानने के लिए तैयार न थी। फलतः उन्होंने अनशन का सहारा लिया। इससे सारे देश में भारी चिन्ता फैल गयी। सरकार इस आम चिन्ता के कारण मजबूर हुई। उसने कई आदमियों को अनशन के दौरान गांधी जी से मिलने की इजाजत दे दी। इससे कांग्रेस नेताओं की रिहाई और कांग्रेस सरकार के मध्य समझौता वार्ता चलाने के आंदोलन का सूत्रपात हुआ।

गांधी जी ने अपने विभिन्न पत्रों में यह स्पष्ट कर दिया कि भारत छोड़ो आंदोलन और कांग्रेस नेताओं की गिरफ्तारी के फलस्वरूप पैदा होने वाली राजनीतिक जिच को दूर करने के लिए वह कोई वाजिब राह न सकते।

सरकार से बातचीत के सवाल पर जिस तरह गांधी जी ने 'भारत छोड़ो' आंदोलन के किसी भी प्रस्ताव को रद्द करना अस्वीकार किया था उसी तरह कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समझौता वार्ता के सवाल पर भी

उन्होंने नया रुख अपनाया। एक साल से कुछ अधिक दिनों के बाद राजाजी ने यह बात खोल दी।

> "१ जुलाई १९४४ को राजाजी ने वह फार्मूला प्रकाशित किया जिस पर १९४३ में गांधी जी के साथ उनके अनशन के दिनों में विचार-विमर्श हुआ था और गांधी जी ने जिसका अनुमोदन किया था। यही फार्मूला कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समझौते के आधार का काम देगा ऐसा सोचा गया था।

गांधी जी ने जिन्ना के साथ भी सीधा सम्पर्क स्थापित करने की कोशिश की। जिन्ना ने शिकायत की थी कि गांधी जी सीधे मुझे क्यों नहीं लिखते। इस शिकायत का उल्लेख करते हुए गांधी जी ने मई के आरम्भ में उनके पास लिखा

> मैं आपके निमंत्रण का स्वागत करता हूं। मेरा सुझाव है कि पत्र-व्यवहार के जरिए बातचीत करने के बजाय हमारी प्रत्यक्ष मुलाकात हो।

पर सरकार कांग्रेस के साथ बातचीत करने के सवाल पर नहीं झुकी। न ही उसने कांग्रेस और मुस्लिम लीग में बातचीत के लिए सुविधा प्रदान की। गांधी जी के खतों के जवाब में उसने कहा कि गांधी जी अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के अगस्त प्रस्ताव से अपना सम्बंध तोड़ लें और जनता तथा कुछ कांग्रेस नेताओं द्वारा की गयी हिंसात्मक कार्रवाइयों की निन्दा करें।

जिन्ना के नाम गांधी जी के खत को सरकार ने उनके पास भेजने से यह कहते हुए इनकार कर दिया कि सरकार ऐसे व्यक्ति को राजनीतिक पत्राचार की सुविधा देने के लिए तैयार नहीं है जो एक गैर कानूनी जन-आंदोलन छेड़ने के कारण नजरबन्द किया गया है और जिसने उससे सम्बंध-विच्छेद नहीं किया है।

अतः राजनीतिक शिथिलता १९४३ के पूरे साल भर और १९४४ की पहली छमाही तक जारी रही। कांग्रेस नेताओं की नजरबन्दी से समूचा देश क्षुब्ध था पर सरकार उन्हें रिहा कर देने की मांग को स्वीकार करने

के लिए तैयार नहीं थी। मई १९४४ में जाकर गांधी जी जेल से रिहा किये गये और वह भी तब जब उनका स्वास्थ्य बहुत ज्यादा गिर गया।

परन्तु उनकी रिहाई से परिस्थिति में हल्का-सा परिवर्तन हुआ। अब गांधी जी कांग्रेस तथा सरकार के सम्बंधों के सवाल पर तथा हिन्दू-मुस्लिम सवाल पर नई नीति की खुली हिमायत कर सकते थे। सभी सम्बद्ध पक्षों द्वारा नीति पर पुनर्विचार करवाने की दृष्टि से उन्होंने लगातार कई कदम उठाये।

सर्वप्रथम "न्यूज क्रानिकल" के संवाददाता स्टीवार्ट गेल्डर के साथ एक मुलाकात में उन्होंने तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति पर अपने विचार व्यक्त किये। गेल्डर के अनुसार उन्होंने कहा

> १९४२ में मेरी जो मांग थी और आज जो मेरी मांग होगी उसमें अन्तर है। आज हम एक ऐसी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना से संतुष्ट होंगे जिसे नागरिक प्रशासन पर पूरा नियंत्रण हो।

गेल्डर को दी गयी अपनी मुलाकात के बाद गांधी जी ने वायसराय को दो पत्र लिखे। इनमें उन्होंने कहा

> मैं कार्यसमिति को यह सलाह देने के लिए तैयार हूं कि वह घोषणा करे कि बदली हुई परिस्थिति को दृष्टि में रखते हुए अगस्त १९४२ के प्रस्ताव में परिकल्पित सविनय अवज्ञा आन्दोलन नहीं चलाया जा सकता और वह युद्ध प्रयास में पूरा सहयोग दे, बशर्ते भारत को तत्काल स्वतन्त्रता देने की घोषणा की जाय और केन्द्रीय विधान सभा के प्रति उत्तरदायी राष्ट्रीय सरकार इस अनुबंध के साथ कायम की जाय कि जब तक युद्ध चल रहा है फौजी कार्रवाइयां उसी तरह चलती रहें जिस तरह चल रही हैं। पर उनके कारण भारत को कोई आर्थिक भार वहन न करना पड़े। अगर ब्रिटिश सरकार समझौते की इच्छा रखती है तो पत्र-व्यवहार के बदले मैत्रीपूर्ण वार्ता की जानी चाहिए। जो भी हो मैं आपके हाथों में हूं।"

दूसरे, गांधी जी ने मुस्लिम लीग के साथ भी बातचीत शुरू कर दी। सितम्बर में राजाजी के फार्मूले के आधार पर गांधी-जिन्ना वार्ता शुरू हुई। यह फार्मूला दरअसल राजाजी के १९४२ के प्रस्तावों का ही एक नया संस्करण था जिन्हें कांग्रेस के बड़े बहुमत ने उस समय ठुकरा दिया था।

तीसरे अगस्त आंदोलन के सम्बंध में गांधी जी ने अपना रुख स्पष्ट किया

> सरकार पागल हो गयी थी और कुछ लोगों का भी यही हाल हुआ था। विध्वंसात्मक तथा ऐसे ही अन्य कार्य किये गये। कांग्रेस के या मेरे नाम पर बहुत सारे काम किये गये।

१९४४ में ९ अगस्त का दिवस मनाने के सवाल पर गांधी जी ने सलाह दी कि "पुलिस ने उस दिन के बारे में जो विशेष प्रतिबंध लगा रखे हैं उनकी अवज्ञा न की जाय केवल बम्बई को छोड़ कर। और बम्बई में भी जहां अगस्त की ऐतिहासिक बैठक हुई थी केवल प्रतीक रूप में ही प्रतिबंधों की अवज्ञा की जाय। उन्होंने उन लोगों को भी जो छिपे हुए थे बाहर आने की सलाह दी। मतलब यह कि उन्होंने देशव्यापी पैमाने पर सरकार की अवज्ञा न करने लेकिन प्रतीक रूप में प्रतिरोध का झंडा बुलन्द रखने का कार्यक्रम पेश किया।

जिन दिनों गांधी जी समझौते की कोशिश कर रहे थे ठीक उन्हीं दिनों सुभाषचन्द्र बोस आजाद हिन्द फौज गठित कर रहे थे। दोनों नेताओं की दो परस्पर-विरोधी नीतियां थीं — एक नीति थी भारत छोड़ो आंदोलन से पीछे कदम हटाने की दूसरी नीति थी देश के अन्दर की विद्रोही शक्तियों को मदद देने के लिए बाहर से सैन्य शक्ति लाते हुए आंदोलन को आगे बढ़ाने की।

लेकिन ये दोनों नीतियां एक प्रकार से एक-दूसरे के पूरक का काम कर रही थीं। पीछे हटने का मार्ग ढूंढते हुए गांधी जी प्रतिरोध का झंडा ऊपर उठाये हुए थे। इसीलिए गांधी जी की ७५वीं वर्षगांठ के अवसर पर रंगून से भाषण देते हुए नेताजी ने कहा — राष्ट्रपिता! मुक्ति के इस संग्राम में हम आपका आशीर्वाद और आपकी शुभ-कामनाएं

चाहते हैं। दूसरी ओर, गांधी जी ने नेताजी के कार्यक्रम और कार्य कलाप के सम्बंध में मौन धारण कर लिया कोई अनुकूल या प्रतिकूल टीका न की।

दोनों ही नीतियां अपने-अपने तात्कालिक उद्देश्य सिद्ध करने में असफल रहीं।

ब्रिटिश सरकार द्वारा खड़ी की गयी अवरोध की दुर्भेद्य दीवार से टकरा कर बातचीत की गांधी जी की सारी कोशिशें बेकार साबित हुईं। राष्ट्रीय सरकार की उनकी मांग का जवाब वायसराय ने यह कह कर दिया कि युद्ध काल में कोई वैधानिक परिवर्तन करना संभव नहीं है। मुस्लिम लीग के साथ भी वार्ता असफल हुई क्योंकि जिन्ना ने राजाजी का फार्मूला और गांधी जी की शर्तें नामंजूर कर दीं। उन्होंने कहा कि इससे मुस्लिम भारत की पाकिस्तान की मांग का बधिया बैठ जायगा।

नेताजी की भी नीति असफल हुई। १९४४ में योरप में युद्ध का दूसरा मोर्चा खुल गया। सोवियत लाल सेना वेगपूर्वक जर्मनी में घुस गयी। चीन और अन्य एशियाई देशों में पराक्रमपूर्ण प्रतिरोध संघर्ष चलने लगे। इन सबसे यह स्पष्ट हो गया कि जापानी फासिस्टों के सहयोग से संगठित सशस्त्र सेना की सहायता से आन्तरिक क्रान्तिकारी आंदोलन उभारने की नेताजी की नीति निरर्थक सिद्ध हुई है। आजाद हिन्द फौज की स्थापना के कुछ ही महीनों के अन्दर उसे और उसके जापानी सहयोगियों को मित्रराष्ट्रों की पुनर्गठित फौजों का सामना करना पड़ा। अन्त में उनकी हार हुई। आजाद हिन्द फौज का अन्त हो गया यह अब केवल एक ऐसी शक्ति के रूप में रह गयी जो अपने स्वरूप एवं उद्देश्य की वजह से भारतीय जनता में गौरव और देशभक्ति की भावना जगाती थी।

पर इन अंतरराष्ट्रीय घटनाओं का आन्तरिक राजनीतिक स्थिति पर प्रभाव पड़ा। मित्र-शक्तियों के प्रबल दबाव के कारण ब्रिटिश-सरकार के लिए कांग्रेस नेताओं को जेल में रखना असम्भव हो गया। अब वह यह भी नहीं कह सकती थी कि युद्ध की स्थिति के कारण वैधानिक परिवर्तन का सवाल नहीं उठता है।

जून १९४५ में कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य रिहा कर दिये गये। इसके बाद वायसराय की केन्द्रीय एक्जीक्यूटिव कौंसिल को पुनर्गठित करने का प्रस्ताव आया। प्रस्ताव में था

> गवर्नर जनरल और सेनाध्यक्ष को छोड़कर बाकी सभी सदस्य भारतीय राजनीतिक नेता होंगे। इनमें सवर्ण-हिन्दुओं और मुसलमानों को बराबर-बराबर प्रतिनिधित्व मिलेगा। इस योजना के अनुसार वायसराय प्रान्तीय प्रधान मंत्रियों और भूतपूर्व प्रधान मंत्रियों का सम्मेलन आयोजित करेंगे। इन्हें नामों की सूची पेश करने को कहा जायगा जिसमें से वायसराय नये एक्जीक्यूटीव कौंसिल के सदस्य चुनेंगे।

लेकिन यह कोशिश असफल हुई, क्योंकि जिन्ना ने दो राष्ट्रीय मुसलमानों मौलाना आजाद और मी आसफ अली के मंत्रि-परिषद में लिए जाने पर एतराज किया। यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा था कि अंग्रेज कोई भी सुधार न होने देने के लिए साम्प्रदायिक प्रश्न का फायदा उठा रहे थे।

इससे आम जनता में रोष की लहर फैल गयी। लोग सरकार की नीति की असलियत और भी स्पष्टता के साथ देखने लगे थे। राष्ट्रीय सरकार की स्थापना सम्बन्धी बातचीत की असफलता के बाद आजाद हिन्द फौज के बन्दियों की रिहाई का जबर्दस्त देशव्यापी आन्दोलन शुरू हो गया। सरकार ने आजाद हिन्द फौज के बन्दियों पर १९४५ के अन्त में मुकदमे चलाये। इन बन्दियों को बचाने का सवाल साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन के एक नये ज्वार का केन्द्रबिन्दु बन गया।

आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों को लेकर साम्राज्य-विरोधी आंदोलन की नई लहर पैदा हुई और उधर अंग्रेजी सेना के भारतीय सिपाहियों पर इसका असर पड़ा। भारतीय नौसैनिकों का विद्रोह इस बात की घोषणा थी कि १९४२ के आंदोलन के कुचले जाने या आजाद हिन्द फौज की हार से भारत की प्रतिरोध-भावना दबी नहीं थी।

स्थिति से गांधी जी बहुत अधिक चिन्तित हो उठे थे। नाविक विद्रोह से कुछ समय पहले उन्होंने हरिजन में लिखा था

"वायुमंडल में धुआं फैल रहा है। अबीर देशप्रेमी यदि इसका लाभ उठा सके तो वे अवश्य लाभ उठा कर, हिंसा के जरिए, आजादी का ध्येय आगे बढ़ाने की कोशिश करेंगे। आजाद हिन्द फौज ने हमारे ऊपर जादू कर दिया है। नेताजी का नाम छा गया है। उनकी देशभक्ति किसी का भी मुकाबला कर सकती है। इससे अधिक प्रशंसा और सराहना मैं नहीं कर सकता। क्योंकि मैं जानता था कि उनके कार्य की विफलता निश्चित है और यदि वह अपनी आजाद हिन्द फौज को विजयी बना कर भी भारत में ले आते तब भी मैं यही कहता ।"

नाविक विद्रोह के बारे में उन्होंने कहा

"नौसेना का यह विद्रोह और उसके बाद की घटनाएं किसी अर्थ में अहिंसात्मक नहीं हैं। वे भारत के लिए बुरा और अशोभनीय उदाहरण प्रस्तुत कर रही हैं।

साम्राज्य विरोधी आंदोलन के नये उभार से अंग्रेजों ने सामने यह स्पष्ट हो गया कि पुराने तरीके से शासन करना अब असम्भव है। अतः राजनीतिक संकट हल करने के लिए उन्होंने नये कदम उठाने का फैसला लिया। मंत्रि-मंडल के तीन सदस्यों का एक प्रतिनिधि-मंडल विभिन्न भारतीय दलों से बातचीत करने के लिए भारत भेजा गया।

प्रतिनिधि-मंडल ने अप्रैल और मई में लम्बी वार्ताएं चलायी और दीर्घ एवं अल्प-सूत्री योजनाएं पेश की। दीर्घ-सूत्री योजना यह थी— नवनिर्वाचित प्रान्तीय विधान सभाएं एक नयी विधान निर्मात्री परिषद् चुने। प्रान्तों के तीन समूह बनाये गये — क ख और ग। प्रत्येक समूह को संघ से अलग हो जाने का अधिकार दिया गया। यह मुस्लिम लीग की मांग को अंशतः पूरा करने के लिए किया गया। अल्प-सूत्री योजना यह थी कि कांग्रेस लीग और अन्य पार्टियों और समूहों के प्रतिनिधियों को लेकर अन्तरिम सरकार गठित की जाये।

काफी लम्बी बातचीत के बाद उपरोक्त प्रस्तावों के फलस्वरूप १९४६ की आखिरी छमाही में अन्तरिम सरकार बनी और एक वर्ष बाद भारत और पाकिस्तान के दो स्वतंत्र राज्य कायम हो गये।

१२   १५ अगस्त — विजय या पराजय ?

१९४७ के सत्ता हस्तान्तरण को कांग्रेसी नेता विश्व इतिहास की बेजोड़ घटना बताते हैं। वे कहते हैं कि फ्रांसीसी क्रान्ति रूसी क्रांति और चीनी क्रांति के विपरीत १९४७ की भारतीय क्रांति खून का एक कतरा बहाये बिना सम्पन्न हुई, क्योंकि इसका नेतृत्व स्वयं अहिंसा के अवतार महात्मा गांधी ने किया।

लेकिन खुद महात्मा गांधी ने इस विचार से असहमति प्रकट की। श्री तेन्दुलकर लिखते हैं

> समूचे देश में खुशियां मनायी जा रही थीं पर वह आदमी जिसने भारत को विदेशी शासन से आजाद कराने में सबसे बढ़ कर भाग लिया था इन खुशियों में शरीक नहीं था। भारत सरकार के सूचना और प्रसार विभाग का एक अधिकारी जब गांधी जी के पास उनसे सन्देश लेने गया तो गांधी जी ने जवाब दिया यह सोता सूख चुका है। उनसे फिर कहा गया कि अगर आपने सन्देश न दिया तो अच्छा नहीं लगेगा। लेकिन गांधी जी ने जवाब दिया मेरे पास कोई सन्देश नहीं है। अगर यह बुरा लगता है तो बुरा ही सही।

इसके पांच महीने बाद मारे जाने के चार दिन पहले यानी २६ जनवरी १९४८ को गांधी जी ने कहा

> आज २६ जनवरी है स्वतंत्रता दिवस है यह समारोह

करना उस समय तक बिलकुल उपयुक्त था जब तक हम उस आजादी के लिए लड़ रहे थे जिसे हमने न देखा था न हाथ में लिया था। पर अब हम इसे हाथ में लेकर देख चुके हैं और ऐसा लगता है कि हमारा भ्रम टूट गया है। कम-से-कम मेरा तो टूट गया है आपका भले ही न टूटा हो।"

भ्रम टूटने का मुख्य कारण समूचे देश में फैला वह साम्प्रदायिक उन्माद था जो ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों के साथ कांग्रेस लीग और अन्य पार्टियों के नेताओं की १९४६-४७ की समझौता वार्ताओं के बाद समूचे देश में फैल गया था। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में ऐसा उन्माद कभी नहीं देखा गया था। १५ अगस्त के ठीक पहले और उसके बाद के महीनों में हिन्दू और मुसलमानों का जैसा भीषण रक्तपात हुआ था वैसा कभी नहीं देखा गया था।

गांधी जी ने बराबर यह दावा किया था कि उन्होंने भारतीय जनता को घृणा के बजाय प्रेम का मार्ग दिखाया है। अगर भारतीय जनता इसी मार्ग पर चलती रही तो वह ब्रिटिश साम्राज्यवादियों जैसे खूंखार उत्पीड़कों तक का हृदय-परिवर्तन कर देगी। लेकिन ब्रिटिश साम्राज्यवादियों का हृदय-परिवर्तन होना तो दूर रहा भारतीय भाइयों के दिल भी आपस एक न हो सके।

गांधी जी को इस बात का श्रेय है और सम्भवतः वह एकमात्र ऐसे नेता थे जिन्होंने सच्चे और शुद्ध दिल से यह स्वीकार किया था कि सत्ता-हस्तान्तरण से सम्बन्धित घटनाएं उन सिद्धान्तों की विजय की द्योतक न थीं जिनकी उन्होंने जीवन भर हिमायत की थी वे उनकी पराजय की द्योतक थीं। १४ जुलाई को उन्होंने कहा

> पिछले ३० वर्षों में हमने जो किया वह अहिंसात्मक प्रतिरोध नहीं बल्कि प्रतिकार शून्य प्रतिरोध था। ऐसा प्रतिरोध वह जिसे महज प्रतिरोध कर सकने में असमर्थ और दुर्बल लोग करते हैं किन्तु अहिंसात्मक लोग नहीं। अहिंसात्मक प्रतिरोध वही कर सकते हैं जिनके हृदय शाश्वत की तरह जीवन्त हो। अहिंसात्मक

प्रतिरोध करना यदि हम जानते तो दुनिया के सामने स्वतंत्र भारत की कुछ और ही तस्वीर पेश करते ऐसी नहीं पेश करते जिसमें भारत दो टुकड़ों में कट चुका है एक टुकड़ा दूसरे को ओर सन्देह की दृष्टि से देखता है और दोनों दस अन्दर आपसी झगड़े में मस्त हैं कि वे दरिद्रनारायण के लिए जिनके सामने एकमात्र धर्म और एकमात्र ईश्वर जीवन की आवश्यकताओं के रूप में प्रकट होता है अन्न-वस्त्र की समस्या के बारे में ठिकाने से सोच भी नहीं पाते हैं।

गांधी जी को इस बात का भी श्रेय है कि वह जीवन के अन्तिम क्षण तक और तब तक जब तक कि शक्ति की आखिरी बूंद उनमें बाकी रही थी साम्प्रदायिकता की दानवी शक्ति के खिलाफ अपने ढंग से लड़ते रहे। १६ अगस्त १९४६ को मुस्लिम लीग ने प्रत्यक्ष संघर्ष दिवस का नारा दिया था। उसी दिन कलकत्ते में पहला साम्प्रदायिक दंगा शुरू हुआ। उस क्षण से ही गांधी जी देश में फैलते जा रहे भीषण साम्प्रदायिक उन्माद के विरुद्ध साम्प्रदायिक एकता का मंत्र फूंकते हुए निकल पड़े थे। जब दंगे नगरों से देहातों में फैलने लगे तो गांधी जी ने सब काम छोड़ कर एकता का प्रचार आरम्भ कर दिया। वह नोआखाली में गांव गांव घूमे। इसी धुन को लेकर वह नोआखाली से बिहार पहुंचे पंजाब जाने को तैयार हुए कलकत्ता गये और दिल्ली पहुंचे। साम्प्रदायिक उन्माद से लड़ना दंगा पीड़ितों की रक्षा करना शरणार्थियों की सहायता प्रदान करना — ये ही उनकी दैनिक प्रार्थना-सभाओं के मुख्य विषय बन गये।

पर यह प्रकट होता जा रहा था कि उनका सन्देश पहले से लगातार कम प्रभावशाली होता जा रहा है। किसी समय उनकी मौजूदगी मात्र से या ज्यादा से ज्यादा अनशन ठान लेने से ही भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के लोग परस्पर पास आ जाते थे और साम्प्रदायिक परिस्थिति सुधर जाती थी। अब भी नोआखाली बिहार, कलकत्ता और दिल्ली आदि जगहों में उनके पहुंचने से एक हद तक या कुछ समय के लिए दंगे रुक गये पर अब वह अपनी पूरी शक्ति लगा कर भी स्थानीय परिस्थिति

में कोई बड़ा अन्तर नहीं डाल पा रहे थे। दूरगामी असर डालने की तो बात ही दूर रही।

हालत इस कदर संगीन हो गयी कि एक बार तो गांधी जी ने लोगों का ध्यान भारत और पाकिस्तान में युद्ध छिड़ जाने की सम्भावना की ओर आकृष्ट किया। स्वभावतः इससे देश भर में सनसनी फैल गयी। कुछ लोगों ने तो यहां तक कहा कि यदि ऐसा युद्ध छिड़ा तो उसे गांधी जी का अनुमोदन प्राप्त होगा। अतः गांधी जी को समझाना पड़ा कि किस हालत में उन्होंने युद्ध की सम्भावना की बात की थी। उन्होंने कहा :

> हमारे देश में यह अंधविश्वास प्रचलित है कि अगर किसी घर में एक बच्चा भी साँप का नाम ले ले तो उस घर में साँप प्रकट हो जाता है। मैं आशा करता हूं कि भारत में कोई आदमी युद्ध के सम्बन्ध में ऐसी कोई धारणा नहीं रखता। मैं तो दावा करता हूं कि मैंने वर्तमान परिस्थिति का विश्लेषण करके और निश्चित रूप से यह बता करके कि दोनों राज्यों के बीच कब युद्ध का कारण उठ खड़ा हो सकता है, इन दोनों के लिए, जो भाई-भाई हैं, लाभ का काम किया। यह मैंने युद्ध भड़काने के लिए नहीं बल्कि जहां तक हो सके उससे बचने के लिए किया। मैंने यह भी बताने की कोशिश की कि यदि जनता द्वारा हत्या, लूट और आगजनी जैसे दुर्भाग्यपूर्ण काण्ड किये जाते रहे तो उनकी सरकारों को बाध्य होना पड़ेगा। एक घटना तर्कसंगत रूप से दूसरी घटना की ओर ले जाती है, एक काण्ड दूसरे को अनिवार्य बना देता है। क्या इस बात की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करना गलत था ?

गांधी जी यह भी जानते थे कि हिन्दुओं और मुसलमानों की शत्रुता इतनी अधिक बढ़ चुकी है कि दोनों में एकता लाने वाले को दोनों ओर के धर्मोन्मादियों के क्रोध का शिकार बनना पड़ेगा। वह जानते थे कि साम्प्रदायिक उन्माद से लड़ना खुद उनके लिए खतरे से खाली न था। २८ जनवरी को राजकुमारी अमृत कौर से बातचीत करते हुए

प्रतिरोध करना यदि हम जानते तो दुनिया के सामने स्वतंत्र भारत की कुछ और ही तस्वीर पेश करते ऐसी नहीं पेश करते जिसमें भारत दो टुकड़ों में कट चुका है एक टुकड़ा दूसरे को घोर सन्देह की दृष्टि से देखता है और दोनों इस कदर आपसी झगड़े में मस्त हैं कि वे दरिद्रनारायण के लिए जिनके सामने एकमात्र धर्म और एकमात्र ईश्वर जीवन की आवश्यकताओं के रूप में प्रकट होता है अन्न-वस्त्र की समस्या के बारे में ठिकाने से सोच भी नहीं पाते हैं।

गांधी जी को इस बात का भी श्रेय है कि वह जीवन के अन्तिम क्षण तक और तब तक जब तक कि शक्ति की आखिरी बूंद उनमें बाकी रही थी साम्प्रदायिकता की दानवी शक्ति के खिलाफ अपने दम से लड़ते रहे। १६ अगस्त १९४६ को मुस्लिम लीग ने "प्रत्यक्ष संघर्ष" दिवस का नारा दिया था। उसी दिन कलकत्ते में पहला साम्प्रदायिक दंगा शुरू हुआ। उस क्षण से ही गांधी जी देश में फैलते जा रहे नीषण साम्प्रदायिक उन्माद के विरुद्ध साम्प्रदायिक एकता का मन्त्र फूंकते हुए भिड़ पड़े थे। जब दंगे नगरों से देहातों में फैलने लगे तो गांधी जी ने सब काम छोड़ कर एकता का प्रचार आरम्भ कर दिया। वह नोआखाली में गांव गांव घूमे। इसी व्रत को लेकर वह नोआखाली से बिहार पहुंचे पंजाब जाने को तैयार हुए, कलकत्ता गये और दिल्ली पहुंचे। साम्प्रदायिक उन्माद से लड़ना पीड़ितों की रक्षा करना शरणार्थियों को सहायता प्रदान करना — ये ही उनकी दैनिक प्रार्थना-सभाओं के मुख्य विषय बन गये।

पर यह प्रकट होता जा रहा था कि उनका सन्देश पहले से लगातार कम प्रभावशाली होता जा रहा है। किसी समय उनकी मौजूदगी मात्र से या ज्यादा से ज्यादा अनशन ठान लेने से ही भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के लोग परस्पर पास आ जाते थे और साम्प्रदायिक परिस्थिति सुधर जाती थी। अब भी नोआखाली बिहार, कलकत्ता और दिल्ली आदि जगहों में उनके पहुंचने से एक हद तक या कुछ समय के लिए दंगे रुक गये। पर अब वह अपनी पूरी शक्ति लगा कर भी स्थानीय परिस्थिति

उन्होंने कहा था कि मैं किसी पागल आदमी की गोलियों का शिकार बन सकता हूं और उन्होंने यह भी कहा कि अगर ऐसा हुआ तो मैं "हंसते हुए अपने प्राणों की बलि दूंगा। मेरे अन्दर क्रोध की भावना नहीं आनी चाहिए। मेरे हृदय में और मेरे होठों पर भगवान का नाम होना चाहिए। इस उक्ति के दो ही दिन बाद गांधी जी हत्यारे की गोलियों के शिकार हुए। उनके ये हृदयविदारक शब्द हमारे कानों में सदा-सर्वदा गूंजते रहेंगे।

१५ अगस्त के समारोह मे इन दुखद घटनाओं के कारण ही गांधी जी शरीक नहीं हो सके। पर खुद कांग्रेस के अन्दर जो घटनाएं हो रहीं थीं वे कम महत्वपूर्ण नहीं थीं। सत्ता हस्तांतरण के कुछ समय पहले से ही गांधी जी कांग्रेस-जनों द्वारा संगठन का व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए उपयोग किया जाना देखकर चिन्तित हो उठे थे। उदाहरण के लिए, जुलाई १९४६ को उन्होंने दुखद बात शीर्षक एक टिप्पणी लिखी थी। इसमें उन्होंने लिखा

> मेरी डाक में विधान निर्मात्री परिषद् का सदस्य बनना चाहने वालों के पत्रों की भरमार होती है। इससे मैं आशंकित हो उठा हूं। यदि ये पत्र प्रचलित भावना के द्योतक हैं तो कहना होगा कि हमारे बुद्धिजीवी देश की स्वतंत्रता से अधिक उत्सुक व्यक्तिगत स्वार्थ को बढ़ावा देने के लिए हैं।

पर बीमारी फैलती ही गयी। उसने एक गम्भीर समस्या का रूप धारण कर लिया। गांधी जी को पत्र लिखने वाले अनेक लोगों ने इस समस्या की ओर गांधी जी का ध्यान आकृष्ट किया। इसी समस्या तथा खतरनाक परिस्थिति ने गांधी जी को जनवरी १९४८ का अपना अनशन ठानने के लिए प्रेरित किया। यह उनके जीवन का अन्तिम अनशन व्रत था। १२ जनवरी की प्रार्थना-सभा में उन्होंने अगले दिन से अनशन शुरू करने का निर्णय घोषित किया। इस प्रार्थना सभा में उन्होंने आश्रम के वयोवृद्ध कार्यसी सेवक कोंडा वेंकटप्पैया के एक पत्र का हवाला दिया। पत्र मे लिखा था

हमारे सामने अनेक बहुत ही जटिल राजनीतिक और आर्थिक सवाल हैं। पर इनके साथ ही एक और बहुत बड़ी समस्या कांग्रेसी क्षेत्र के लोगों के नैतिक अध:पतन की है। दूसरे प्रान्तों के बारे में मैं अधिक कुछ नहीं कह सकता पर मेरे अपने प्रान्त में स्थिति अत्यंत खेदजनक है। राजनीतिक सत्ता का रस चखकर लोगों के दिमाग फिर गये हैं। कांग्रेसी हल्कों में गुटबन्दियां कायम हो गयी हैं। असेम्बली और कौंसिल के बहुत से सदस्य धन बटोरने के चक्कर में लग गये हैं और मंत्रियों में दुर्बलता है, इस सबसे आम जनता में विद्रोह की भावना फैल रही है। लोग कहने लगे हैं कि ब्रिटिश सरकार कहीं अच्छी थी। वे कांग्रेस को गालियां तक देने लगे हैं।

गुटबन्दियां और सत्ता प्राप्त करने की होड़ प्रान्तीय और जिला कांग्रेस कमिटियों में तो जोर-शोर से फैली हुई थी ही केन्द्रीय नेतृत्व भी इससे अछूता न बचा था। नवम्बर १९४७ में अखिल भारतीय नेतृत्व के अन्दर एक छोटा-मोटा संकट पैदा हो गया था।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के अधिवेशन के पहले ही दिन कांग्रेस अध्यक्ष कृपलानी जी ने गांधी जी के सामने कहा कि मैं अपने पद से इस्तीफा दे रहा हूं। सरकार ने उनसे परामर्श नहीं किया था और न उन्हें सारी बातें बतायी जाती थीं। उन्होंने कहा कि सरकार कांग्रेस दल की उपेक्षा कर रही है। कृपलानी जी ने यह भी प्रकट किया कि गांधी जी के ख्याल से ऐसी परिस्थिति में उनका इस्तीफा देना उचित था। नेहरू और पटेल सरकार के प्रमुख थे। उनकी लोकप्रियता और कांग्रेस संगठन के ऊपर उनका प्रभाव निर्विवाद था। वे यह समझते थे कि हम और पार्टी दो नहीं हैं। फिर अपनी सत्ता पर कांग्रेस अध्यक्ष का अंकुश भला वे क्यों स्वीकार करते।

कृपलानी जी का इस्तीफा मंजूर करके और उनकी जगह श्री राजेन्द्र प्रसाद को कांग्रेस अध्यक्ष बनाकर इस संकट को दूर किया

गया। पर सरदार पटेल और जवाहरलाल नेहरू के सम्बन्ध और भी बिगड़ गये। श्री तेन्दुलकर लिखते हैं कि गांधी जी सरदार पटेल और नेहरू जी के झगड़े के बारे में जानते थे और उससे चिन्तित थे। वह चाहते थे कि दोनों एकठ्ठा बनाये रखें। इसी सिलसिले में ३ जनवरी की चार बजे शाम को यानी मृत्यु से एक घंटा पहले उन्होंने सरदार पटेल से बात की और इसी सिलसिले में "शाम की प्रार्थना के बाद नेहरू जी और मौलाना आजाद उनसे मिलने वाले थे।

कांग्रेस की अन्दरूनी घटनाओं की वजह से गांधी जी कांग्रेस के भविष्य के बारे में भारी सोच में पड़ गये थे। उन्होंने कांग्रेस के पुनर्गठन के लिए एक विधान तैयार किया था। जीवन के अन्तिम दिनों में तैयार किये गये उनके इस सुविख्यात मसविदे में ये शब्द लिखे गये थे

> अपनी मौजूदा सूरत-शक्ल में कांग्रेस प्रचार के वाहन तथा संसदीय यन्त्र के रूप में अपनी उपयोगिता समाप्त कर चुकी है। भारत में उसके नगरों और कस्बों के अलावा और उनसे स्पष्ट रूप में अलग सात लाख गांव हैं। भारत को इन गांवों के लिए सामाजिक नैतिक और आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त करना अभी बाकी है। जनवादी लक्ष्य की ओर भारत की प्रगति में सैनिक सत्ता पर नागरिक सत्ता के प्रभुत्व के लिए संघर्ष होना अनिवार्य है। कांग्रेस को राजनीतिक दलों और साम्प्रदायिक संगठनों के साथ अस्वास्थ्यकर होड़ से बचाकर रखना जरूरी है। इन तथा ऐसे ही अन्य कारणों से अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी मौजूदा कांग्रेस संगठन को तोड़ कर एक लोक सेवक संघ के रूप में प्रस्फुटित होने का फैसला करती है। लोक सेवक संघ के निम्नांकित नियम होंगे और आवश्यक होने पर इन्हें बदलने का उसे अधिकार होगा।

गांधी जी के सभी सहयोगी पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति की खुशियां मना रहे थे पर वह भारतीय राज्य की स्थापना पर प्रसन्नता अनुभव करने के बदले नवजात राज्य की अस्थिरता के बारे में चिन्तित थे। यह भी गांधी जी की ही विशेषता थी। दूसरे कांग्रेसी नेता सत्ता-हस्तांतरण

राष्ट्रीय ध्येय के लिए जबर्दस्त कुर्बानियाँ की थी सत्ता और वैयक्तिक स्वार्थ सिद्धि के लिए आपस में लड़ने-झगड़ने लगे।

वह सही युक्ति पेश कर सके कि मनुष्यों पर पागलपन छा गया था। याद रहे कि इस मनुष्य के नैतिक पुनरुत्थान के लिए ही उन्होंने अहिंसक प्रतिरोध का सिद्धांत और व्यवहार प्रतिपादित किया था। पर तीस वर्ष के उनके प्रेम और अहिंसा के उपदेश के बाद भी पागल मनुष्य संयत मनुष्य बनने के बदले संयत मनुष्य पागल बन गया। ऐसा क्यों हुआ? इस सवाल का जवाब गांधी जी से नहीं बन पड़ा। उन्होंने इसे भगवान की मर्जी कहकर टाल दिया।

कार्यक्षेत्र में गांधी जी साम्प्रदायिकता की आसुरी शक्तियों का बड़ी ही वीरता के साथ मुकाबला कर रहे थे पर उनका आत्मविश्वास जाता रहा था। जीवन-रस और यहां तक कि जीने की इच्छा भी वह खो चुके थे। १९४७ में अपनी वर्षगांठ के अवसर पर एक मित्र का पत्र लिखते हुए उन्होंने कहा

> निस्संदेह आदर्श वस्तु यह होगी कि मैं १२५ वर्ष जीने की इच्छा रखी जाये और मैं फौरन ही मर जाना चाहा जाय। मैंने तो अपने को पूर्णतया हरि इच्छा पर छोड़ रखा है। यदि मैंने १२५ वर्ष जीने की अपनी इच्छा खुलकर जाहिर करने की धृष्टता की थी तो मुझमें बदली हुई परिस्थिति में इस इच्छा को खुलकर तिलांजलि देने की विनम्रता भी होनी चाहिए। मैं तो सर्व शक्तिमान से यही प्रार्थना करता हूं कि मुझे इस शोक भूमि से उठा ले ताकि मुझे अपने को हिन्दू, मुसलमान या कुछ और कहने वाले मानवों को जो वस्तुतः वनमानुष बन गये हैं एक-दूसरे का कत्लेआम करने का दृश्य बेबसी के साथ देखना न पड़े।

यहां गांधी जी की महानता की सीमा थी। पूंजीपति वर्ग के विश्व दर्शन से परिसीमित दृष्टि रखने के कारण गांधी जी यह देखने में असमर्थ रहे कि साम्प्रदायिक सम्बन्धों का बिगड़ना या सत्ता-हस्तांतरण के समय में कांग्रेस का अध पतन आकस्मिक घटनाएं न थी बल्कि वे सामाजिक

विकास क कतिपय नियमों के क्रिया-कलाप क परिणाम थ। अगर वह इसे देख पाते तो अवश्य ही यह देखते कि हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों का कारण हिन्दू या मुस्लिम जन-समुदायों का कोई आन्तरिक विकार नहीं था। बल्कि उसका कारण यह था कि कुछ सामाजिक ताकतें उन्हें एक-दूसरे के विरुद्ध भड़का रही थी। तब वह हिन्दू और मुस्लिम जनता के भाग्य को खुदा के हाथों में न छोड़ देते बल्कि उन सामाजिक ताकतों से लड़ते जो हिन्दू-मुस्लिम झगड़े की आग लगा रही थी।

साम्प्रदायिक फूट पैदा करने वाली सामाजिक ताकतों के बारे में ऐसी कोई समझदारी न रखने क कारण ही गांधी जी सम्भवत साम्प्रदायिक दलों से भी ज्यादा भय प्रतिगामी तत्वों के विरुद्ध संघर्ष में एकता से खाते थ। नाविक विद्रोह के दौरान प्रकट होने वाली ऐसी हिन्दू मुस्लिम एकता इसकी मिसाल है। गांधी जी ने उसके विषय में लिखा था

> नौ-सैनिकों की यह बगावत और इसके बाद की घटनाएं किसी भी अर्थ में अहिंसक कार्रवाइयां नहीं हैं। हिंसात्मक कार्य के लिए हिन्दुओं मुसलमानों और दूसरों का मेलजोल अपावन मेलजोल है। वह पारस्परिक हिंसा की ओर ले जायेगा या वह सम्भवत ऐसी हिंसा की तैयारी है। यह भारत के लिए और समूची दुनिया के लिए बुरा है। अरुणा का कहना है कि वैधानिक मोर्चे क ऊपर हिन्दुओं और मुसलमानों को एक करने से उन्हें रण के मोर्चे पर एक करना श्रेयस्कर है'।

गांधी जी के वायसराय क अधःपतन का कारण न देख पाने क पीछे भी यही बात थी। वह वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को बुरा समझते थे। उनका दावा था कि प्रत्येक व्यक्ति, यहां तक कि जमींदार और पूंजीपति वर्ग का प्रत्येक व्यक्ति भी सहज ही नेक और भला जीव है। इसलिए उन्होंने यह न देखा कि ऊपरी और मध्यम वर्गों के राजनीतिज्ञ का—य ही कांग्रेस के नेता थे—सत्ता पाने के बाद वैयक्तिक स्वार्थ के लिए लड़ना उतना ही स्वाभाविक था जितना कि सत्ता प्राप्ति के संघर्ष में उनका

वैयक्तिक पुनर्निर्माण करना । परिणाम यह हुआ कि व्यक्ति की आन्तरिक अच्छाई की मान्यता से आरम्भ करनेवाले गांधी जी ने इति इस सिद्धान्त के साथ की कि मनुष्य पागल और पतित हो गया है ।

ठीक उस घड़ी में जो करोड़ों भारतवासियों के लिए अपूर्व उल्लास की घड़ी थी यानी स्वतंत्रता प्राप्ति की घड़ी में गांधी जी ने यह मत व्यक्त किया कि उनका जीवन-व्रत (मानव के पुनरुत्थान का व्रत) विफल सिद्ध हुआ है । यह इतिहास की बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना है । अंग्रेज-विरोधी संघर्ष में पूंजीपति वर्ग की रणनीति और कार्यनीति के रूप में गांधीवाद विजयी हुआ पर नये सामाजिक दर्शन के रूप में मानव पुनरुत्थान के नये उपाय के रूप में यह व्रत-प्रतिज्ञा असफल सिद्ध हुआ । उपरोक्त घटना इस तथ्य का अकाट्य प्रमाण है ।

महात्मा गांधी का जीवन और उनकी सीख क्या महत्व रखती है? १९२ के बाद जब वह अपनी जीवन-कथा लिखने बैठे तो इसे उन्होंने "सत्य के प्रयोग" का नाम दिया था। क्या उनकी जीवन-कथा सत्य के उनके प्रयोगों की कथा है?

मोहनदास गांधी "राष्ट्रपिता" बन गया। प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों का रंगरूट भर्ती करने वाला वफादार सार्जेन्ट १९४२ के "अंग्रेजो भारत छोड़ो" नारे का प्रवक्ता बन गया। पोरबन्दर रियासत के सामन्ती शासकों के स्वामिभक्त सेवकों के परिवार का सपूत देशी रियासतों में जनतंत्र के लिए लड़ने वाला योद्धा बन गया। धर्म की ओर लगाव रखने वाला नौजवान लन्दन में चल रहे एक से एक जनवादी आंदोलनों को छोड़कर शाकाहार मत की ओर आकृष्ट हुआ था पर वही नौजवान हमारे देश के साम्राज्य-विरोधी एवं जनवादी आन्दोलनों का सबसे बड़ा नेता बन गया। इसका रहस्य क्या है?

महात्मा गांधी की घटनापूर्ण जीवन-गाथा को समाप्त करते हुए यह प्रश्न स्वभावतया हमारे मस्तिष्क में उठता है। यह महज किताबी सवाल नहीं है। इसके उत्तर का उन व्यावहारिक कर्तव्यों के साथ सीधा लगाव है जिन्हें आज देश के सभी जनवादियों को पूरा करना है। यद्यपि गांधी जी हमारे बीच नहीं रहे पर उनकी शिक्षाएं जनवादी आंदोलन में कार्यरत अनेक समूहों और व्यक्तियों का पथ प्रदर्शन कर रही हैं।

उदाहरण के लिए, भूदान आंदोलन को लीजिए। यह निस्संदेह

गांधी जी की शिक्षाओं पर आधारित है। हम इसके सिद्धान्त और व्यवहार से मतभेद रख सकते हैं किन्तु इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। इस आंदोलन के दो पहलू गांधी जी की ही शिक्षा के प्रयोग हैं। एक है भू-सम्पत्ति की मौजूदा प्रणाली के प्रति विद्रोह। दूसरा है, इसका यह आग्रह कि भू-सम्पत्ति के मौजूदा असम वितरण को अहिंसात्मक ढंग से ही ठीक करना चाहिए। देश की सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक समस्या यानी भूमि के वितरण की समस्या के सम्बंध में गांधी जी की शिक्षा का यह विशिष्ट प्रयोग है।

हमें यह भी न भूलना चाहिए कि यह गांधी जी की शिक्षा का ही प्रभाव है कि बहुत से गांधीवादी (इनमें विनोबा भी भी शामिल हैं) आज किसी न किसी रूप में शांति आंदोलन के साथ हैं।

दूसरी ओर, हम यह न भूलें कि तथाकथित भीड़ की हिंसा के विरुद्ध गांधी जी के उपदेश का नाम लेकर ही सरकार के वर्तमान नेता मजदूर वर्ग और किसानों के बढ़ते हुए जन-आंदोलन के खिलाफ हिंसक कार्रवाइयां करते हैं।

गांधी जी की भूमिका का जबरदस्त महत्व इस बात से भी आंका जा सकता है कि कांग्रेस के सभी गुट और सभी धाराएं, तथा कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़कर, लगभग सभी राजनीतिक पार्टियां अपनी नीतियों का समर्थन करने के लिए गांधी जी के नाम का उपयोग करती हैं। दूसरे, गांधी जी और उनकी शिक्षा की भूमिका एवं महत्व आंकने की कोशिश करना जनवादी आंदोलन को और भी विकसित करने में बहुत बड़ा व्यावहारिक महत्व रखता है।

यह काम आसान नहीं है। इतिहास के सभी अन्य विशिष्ट व्यक्तियों की भांति गांधी जी का व्यक्तित्व भी बड़ा ही जटिल व्यक्तित्व था। उनकी शिक्षा को भी किन्हीं आसान सूत्रों द्वारा वर्णित करके सन्तोष नहीं कर लिया जा सकता। जैसे यह कह कर कि गांधी जी वह व्यक्ति थे जिसने राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरणा प्रदान की और जनता को साम्राज्य-विरोधी संघर्ष के लिए उभारा या यह कहकर कि गांधी जी "एक क्रान्ति-विरोधी थे जिसने हमारे राष्ट्रीय आंदोलन की क्रान्तिकारी दिशा

में जाने से रोका या ऐसी ही अन्य कोई बात कहकर बात समाप्त नहीं की जा सकती ।

गांधी जी का जीवन भांति-भांति की घटनाओं से भरपूर था । उनके भाषणों और लेखों का परिमाण बहुत ही बड़ा है और उनमें मानवी क्रिया-कलाप के अति विविध क्षेत्रों को लिया गया है । कई मौकों पर उनके कर्म बड़े ही नाटकीय थे । इसलिए यदि कोई व्यक्ति गांधी जी और गांधीवाद के सम्बन्ध में अपना कोई खास निष्कर्ष प्रमाणित करना चाहे तो उसके लिए मसाले की कमी न होगी । उसके लिए बस इतना ही करना पर्याप्त होगा कि गांधी जी के जीवन की कुछ चुनी हुई घटनाओं और उनके भाषणों और लेखों के कुछ चुने हुए अंशों को लेकर एक सूत्र में पिरो दे । लेकिन असल काम और वास्तविक कठिनाई का काम उन घटनाओं या वक्तव्यों को चुनना है जो इतिहास की दृष्टि से वास्तविक महत्व रखते हैं, उनके जीवन और उनकी शिक्षा के विभिन्न पहलुओं के अन्तःसम्बन्ध को देखना है और इसके बाद उनके और उनके जीवन-पथ के बारे में एक समग्र एवं सुसम्बद्ध जानकारी हासिल करना है ।

दुर्भाग्यवश अभी तक इस दिशा में जो प्रयास किये गये हैं, वे उपरोक्त दो कोटियों में ही आते हैं । या तो वे अति-सरल और एक-पक्षीय प्रशस्तियां हैं या वे अति-सरल और एक-पक्षीय आलोचनाएं हैं । अतः इन दोनों ही भटकावों से बचने का पूर्ण प्रयास करना चाहिए । इसमें योग दान करने के लिए विनम्रतापूर्वक हम उन निष्कर्षों को नीचे दे रहे हैं जो हमारे विचार से गांधी जी के जीवन से निकलते हैं ।

पहली उल्लेखनीय बात यह है कि गांधी जी आदर्शवादी थे वह इस अर्थ में ही आदर्शवादी नहीं थे कि उनका दर्शन दार्शनिक भौतिकवाद के विपरीत था बल्कि इस अर्थ में भी आदर्शवादी थे कि उन्होंने अपने सामने कुछ आदर्श रख छोड़े थे जिनका उन्होंने जीवन के अन्त तक पालन किया । सत्य अहिंसा जीवन के सुखों का परित्याग आदि जैसी नैतिक मूल्य-मान्यताएं, स्वतंत्रता जनतंत्र और शान्ति जैसे राज-नीतिक आदर्श जात-पांत के भेद का उन्मूलन नारी की मुक्ति, सभी

का अपने सहकारियों के संसदीय कार्यकलाप के साथ कुशलतापूर्वक मेल बैठाना शत्रु के विरुद्ध जनता का प्रत्यक्ष आंदोलन चलाते हुए उससे बातचीत भी करते जाने का विशिष्ट सिद्धान्त ही गांधीवादी तरीका था। ये सभी व्यवहारतः पूंजीवादी वर्ग के लिए बड़े उपयोगी सिद्ध हुए, क्योंकि इनसे (क) आम जनता साम्राज्य के विरुद्ध मैदान में उतारी गयी और (ख) उसे क्रान्तिकारी जन-आंदोलन करने से रोका गया। जनता को उभारने और साथ ही उस पर अंकुश रखने की साम्राज्य-विरोधी प्रत्यक्ष संघर्ष छेड़ने और साथ ही साम्राज्यवादी शासकों के साथ समझौता-वार्ता चलाते जाने की गांधी जी की क्षमता ने उनको पूंजीपति वर्ग का निर्विवाद नेता बना दिया। ऐसे नेता में वर्ग के सभी गुटों और समूहों को विश्वास था इसलिए वह इन्हें एकताबद्ध और सक्रिय कर सकते थे।

आखिरी बात यह है कि पूंजीवादी वर्ग के अग्रणी नेता के रूप में गांधी जी की भूमिका का यह अर्थ न समझ लेना चाहिए कि वह सदा और हर सवाल पर पूंजीपति वर्ग के साथ रहते थे। बल्कि यह उनकी खूबी है और उस वर्ग की जिसके वह मित्र दार्शनिक और पथ-प्रदर्शक थे खूबी है कि कई मौकों पर और कई सवालों के सम्बंध में वह अल्पमत में होकर, बल्कि अकेले ही आवाज उठाते थे। ऐसे सभी मौकों के लिए उनके और बाकी लोगों में यह आपसी समझौता था कि अस्थायी रूप से वे अलग-अलग मार्गों पर चलेंगे। यह चीज हमें बारबार देखने को मिलती है। असहयोग आंदोलन के बाद के वर्षों में (जब स्वराजियों और यथास्थिति-वादियों में दल-विभाजन हो गया था) फिर १९३२ ३३ के सविनय अवज्ञा आंदोलन के वर्षों में इसके बाद कई बार द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों में और अन्ततः स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ महीने पहले और उसके कुछ महीने बाद की अवधियों में हमें उपरोक्त कथन की सत्यता देखने को मिलती है।

उनके जीवन के अन्तिम दिनों में तो हम खास तौर से इस चीज को पाते हैं। उस समय उनका आदर्शवाद और कुछ सरदार पटेल के व्यावहारिकतावाद के साथ टकराया था। उग्रवादी बुद्धिजीवी पंडित नेहरू तथा कई अन्य लोगों के आधुनिकतावाद के साथ उनकी

टक्कर हुई थी। आजादी के बाद के महीनों में उनके और उनके सह धर्मियों के बीच बढ़ती हुई खाई ने उनके जीवन को दुखद मृत्यु से पहले ही दुखद बना दिया था।

इस खाई को देखने पर ही हम गांधी जी का सचमुच वस्तुगत तथा हर पहलू से मूल्यांकन कर पाते हैं। यह खाई इस वास्तविकता की अभिव्यक्ति थी कि कतिपय नैतिक मूल्य-मान्यताओं के बारे में गांधी जी का आग्रह एक समय में पूंजीपति वर्ग के लिए काम की चीज थी लेकिन उनके जीवन के अन्तिम दिनों में यह उनके राह का रोड़ा बन गया था।

जिन दिनों पूंजीपति वर्ग को एक साथ दो मोर्चों पर लड़ना पड़ रहा था यानी एक ओर साम्राज्यवाद से लड़ना पड़ रहा और दूसरी ओर साम्राज्यवाद से लड़ने के लिए शहरी और देहाती गरीब जनता को मैदान में लाते हुए इस जनता में उभरती क्रान्तिकारी वर्ग की प्रवृत्ति से लड़ना पड़ रहा था उस समय गांधी जी द्वारा आविष्कृत अहिंसात्मक प्रतिरोध की कार्यविधि पूंजीपति वर्ग के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई। पर साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष के सफल हो जाने यानी पूंजीवादियों और उनके वर्ग-मित्रों के राज्यसत्ता प्राप्त कर लेने के बाद दो मोर्चों पर लड़ने की आवश्यकता नहीं रह गयी। अगर साम्राज्यवाद से अब भी भिड़ना हो तो यह काम राज्य के स्तर पर किया जा सकता है। इसके लिए आम जनता को मैदान में लाने की जरूरत नहीं रह गयी है।

इसके अलावा राज्यसत्ता चूंकि पूंजीपति वर्ग के हाथ में आ गयी थी और इसका इस्तेमाल अपने वर्ग हितों के लिए करना था इसलिए इस वर्ग और इसके राज्य-यंत्र की आम जनता से अधिकाधिक टक्करें होने लगीं। सत्ता-प्राप्ति का दूसरा परिणाम यह हुआ कि पूंजीपति वर्ग के पदारूढ़ व्यक्तिगत प्रतिनिधि (मंत्री संसद-सदस्य और विधान सभा के सदस्य आदि) राज्य एवं जनता के मत्थे अपने मित्रों रिश्तेदारों और चमचों-चमचों के घर भरने लगे। अतः वे भांति-भांति के भ्रष्टाचार-पूर्ण तरीके अपनाने लगे।

धार्मिक गुटों और सम्प्रदायों की एकता आदि जैसे सामाजिक ध्येय—ये गांधी जी के जीवन और उनकी शिक्षा के अभिन्न अंग थे।

दूसरी चीज यह है कि उनके आदर्शवाद ने गांवों की गरीब जनता को नींद से जगाने में बड़ा योग दिया। उससे बात करने में गांधी जी धार्मिक शब्दावलि का प्रयोग करते थे। वह सादा और आडम्बरहीन जीवन बिताते थे और उसकी मांगों के लिए आवेशपूर्वक लड़ते थे। इस सबसे गांवों के करोड़ों गरीब लोग गांधी जी की ओर आकृष्ट हुए। वे उन्हें अवतार मानने लगे।

सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक प्रश्नों पर उनके विचारों को हम "प्रतिक्रियावादी" मान सकते हैं (उनके अनेक विचार तो निर्विवाद रूप से प्रतिक्रियावादी थे)। लेकिन अगर हम इस बात को भूल जायें तो बहुत बड़ी गलती करेंगे कि अपने इन "प्रतिक्रियावादी" विचारों की बदौलत ही उन्होंने किसान जन-समुदाय और आधुनिक राष्ट्रीय जनवादी आंदोलन के शहरी प्रतिनिधियों और नेताओं के बीच सम्पर्क कायम किया। यदि कोई कहे कि गांधी जी ने अपने "प्रतिक्रियावादी सामाजिक दृष्टिकोण के जरिए एक प्रकार क्रान्तिकारी घटना को जन्म दिया देहातों के गरीब जन-समुदाय को आधुनिक राष्ट्रीय जनवादी आंदोलन के अखाड़े में उतारा तो यह बात अन्तर्विरोध से भरी मालूम हो सकती है। पर यह अन्तर्विरोध हमारे देश के वास्तविक राजनीतिक जीवन के इस अन्तर्विरोध की ही अभिव्यक्ति है कि राष्ट्रीय जनवादी आंदोलन का नेतृत्व पूंजीवादी वर्ग ने किया जिसका सामंतवाद के साथ गठबंधन है।

तीसरे, यह बताना आवश्यक है कि यद्यपि गांधी जी ने ग्रामीण गरीब जन-समुदाय को राष्ट्रीय आंदोलन में लाने में बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा की पर प्रथम विश्व युद्ध के बाद के प्रचंड जन-जागरण का श्रेय व्यक्तिगत रूप में उन्हें देना गलत होगा। क्योंकि वह जन-जागरण उन ऐतिहासिक घटनाओं का परिणाम था जो भारत में और भारत में ही नहीं बल्कि समूची दुनिया में घट रही थी। भारतीय किसानों की आर्थिक हालत बराबर बिगड़ती जा रही थी पहले विश्व युद्ध के दौरान और उसके फौरन बाद उसने भीषण रूप धारण कर लिया

था। राष्ट्रीय आंदोलन के अन्दर एक उग्रपंथी अंग पैदा हो गया था जिसका कई इलाकों में किसानों के कुछ हिस्सों के साथ भी सम्पर्क था। टुर्की, चीन और इन सबसे अधिक रूसी क्रान्ति जैसी अन्तरराष्ट्रीय घटनाओं का समूची एशियाई जनता के मस्तिष्क पर असर पड़ रहा था। ये उन मूल कारणों में से कुछ कारण थे जिनका भारतीय किसानों की चेतना पर असर पड़ने लगा था। यदि गांधी जी न होते तब भी ये अपना असर दिखलाते। पर सम्भवतः उस ढंग से नहीं जिस ढंग से इन्होंने अपना असर दिखाया।

लेकिन मेरे यह कहने का मतलब व्यक्ति के रूप में गांधी जी की भूमिका से इनकार करना नहीं है। गांधी जी ने भारतीय किसानों के जागरण को एक विशेष स्वरूप प्रदान किया। यह नव-जागरण स्वतंत्रता और जनवाद के राजनीतिक आंदोलन के साथ जुड़ गया। गांधी जी की भूमिका से इनकार करना वैसी ही एकतरफा बात होगी जैसा कि जन जागरण का समूचा श्रेय उनको प्रदान करना।

चौथे गांधी जी इस बात के लिए प्रशंसा के पात्र हैं कि राजनीतिक जनवादी आंदोलन की प्रमुख दुर्बलताओं को दूर करने में उन्होंने योग दिया अभी तक असंगठित ग्रामीण गरीब जनता को आंदोलन में लाकर उसे सचमुच राष्ट्रीय और सर्वव्यापी आंदोलन बनाया। पर हमें भी न भूलना चाहिए कि वह सदा इस बात से आशंकित रहे कि गांव की गरीब जनता कहीं स्वतंत्र शक्ति के रूप में क्रियाशील न हो जाये। वह इस बात के पूरे हामी थे कि गांव की गरीब जनता स्वतंत्रता और जनवाद के संघर्ष के लिए मैदान में आये लेकिन वह इस बात का पूरा ध्यान रखते थे कि वह उनके अपने वर्ग — पूंजीवादी वर्ग — के नेतृत्व में ही चले।

पांचवीं बात यह है कि गांव की गरीब जनता के प्रति ही नहीं बल्कि मजदूर वर्ग और मेहनतकशों के अन्य समुदायों के प्रति भी उनका रुख ऐसा था जिससे व्यवहारतः पूंजीवादी वर्ग को सहायता मिली। ट्रस्टीशिप (न्यास) का उनका सिद्धान्त राजनीतिक क्रिया-कलाप के संचालन के लिए कतिपय नैतिक मूल्य-मान्यताओं के पालन का उनका आग्रह अपने गैर-संसदीय कार्यक्रम (रचनात्मक कार्यक्रम और सत्याग्रह)

का अपने सहकर्मियों के संसदीय कार्य-कलाप के साथ कुशलतापूर्वक मेल बैठाना शत्रु के विरुद्ध जनता का प्रत्यक्ष आंदोलन चलाते हुए उससे बातचीत भी करते जाने का विशिष्ट सिद्धान्त ही गांधीवादी तरीका था। ये सभी व्यवहारतः पूंजीवादी वर्ग के लिए बड़े उपयोगी सिद्ध हुए, क्योंकि इनसे (क) आम जनता साम्राज्य के विरुद्ध मैदान में उतारी गयी और (ख) उसे क्रान्तिकारी जन-आंदोलन करने से रोका गया। जनता को उभारने और साथ ही उस पर अंकुश रखने की साम्राज्य-विरोधी प्रत्यक्ष संघर्ष छेड़ने और साथ ही साम्राज्यवादी शासकों के साथ समझौता-वार्ता चलाते जाने की गांधी जी की क्षमता ने उनको पूंजीपति वर्ग का निर्विवाद नेता बना दिया। ऐसे नेता में वर्ग के सभी गुटों और समूहों को विश्वास था इसलिए वह इन्हें एकताबद्ध और सक्रिय कर सकते थे।

आखिरी बात यह है कि पूंजीवादी वर्ग के अपनी नेता के रूप में गांधी जी की भूमिका का यह अर्थ न समझ लेना चाहिए कि वह सदा और हर सवाल पर पूंजीपति वर्ग के साथ रहते थे। बल्कि यह उनकी खूबी है और उस वर्ग की जिसके वह मित्र दार्शनिक और पथ-प्रदर्शक थे खूबी है कि कई मौकों पर और कई सवालों के सम्बन्ध में वह अल्पमत में होकर, बल्कि अकेले ही आवाज उठाते रहे। ऐसे सभी मौकों के लिए उनके और बाकी लोगों में यह आपसी समझौता था कि अस्थायी रूप से वे अलग-अलग मार्गों पर चलेंगे। यह चीज हमें बारबार देखने को मिलती है। असहयोग आंदोलन के बाद के वर्षों में (जब स्वराजियों और यथास्थिति-वादियों में मत-विभाजन हो गया था) फिर १९३२ ३३ के सविनय अवज्ञा आंदोलन के वर्षों में इसके बाद कई बार तृतीय विश्वयुद्ध के दिनों में और अन्ततः स्वतंत्रता-प्राप्ति के कुछ महीने पहले और उसके कुछ महीने बाद की अवधियों में हमें उपरोक्त कथन की सत्यता देखने को मिलती है।

उनके जीवन के अन्तिम दिनों में तो हम खास तौर से इस चीज को पाते हैं। उस समय उनका आदर्शवाद "लौह पुरुष" सरदार पटेल के व्यावहारिकतावाद के साथ टकराया था। प्रगतिशील बुद्धिजीवी पंडित नेहरू तथा कई अन्य लोगों के आधुनिकतावाद के साथ उनकी

टक्कर हुई थी। आजादी के बाद के महीनों में उनके और उनके सहकर्मियों के बीच बढ़ती हुई खाई ने उनके जीवन को दुखद मृत्यु से पहले ही दुखद बना दिया था।

इस खाई को देखने पर ही हम गांधी जी का सचमुच वस्तुगत तथा हर पहलू से मूल्यांकन कर पाते हैं। यह खाई इस वास्तविकता की अभिव्यक्ति थी कि कतिपय नैतिक मूल्य-मान्यताओं के बारे में गांधी जी का आग्रह एक समय में पूंजीपति वर्ग के लिए काम की चीज थी लेकिन उनके जीवन के अन्तिम दिनों में वह उनके राह का रोड़ा बन गया था।

जिन दिनों पूंजीपति वर्ग को एक साथ दो मोर्चों पर लड़ना पड़ रहा था यानी एक ओर साम्राज्यवाद से लड़ना पड़ रहा और दूसरी ओर साम्राज्यवाद से लड़ने के लिए शहरी और देहाती गरीब जनता को मैदान में लाते हुए इस जनता में उमड़ती क्रान्तिकारी संघर्ष की प्रवृत्ति से लड़ना पड़ रहा था उस समय गांधी जी द्वारा आविष्कृत अहिंसात्मक प्रतिरोध की कार्यविधि पूंजीपति वर्ग के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई। पर साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष के सफल हो जाने यानी पूंजीवादियों और उनके वर्ग-मित्रों के राज्यसत्ता प्राप्त कर लेने के बाद दो मोर्चों पर लड़ने की आवश्यकता नहीं रह गयी। अगर साम्राज्यवाद से अब भी भिड़ना हो तो यह काम राज्य के स्तर पर किया जा सकता है। इसके लिए आम जनता को मैदान में लाने की जरूरत नहीं रह गयी है।

इसके अलावा राज्यसत्ता चूंकि पूंजीपति वर्ग के हाथ में आ गयी थी और इसका इस्तेमाल अपने वर्ग हितों के लिए करना था इसलिए इस वर्ग और उसके राज्य-यंत्र की आम जनता से अधिकाधिक टक्करें होने लगीं। सत्ता-प्राप्ति का दूसरा परिणाम यह हुआ कि पूंजीपति वर्ग के गणमान्य व्यक्तिगण प्रतिनिधि (मंत्री नगर-अध्यक्ष और विधान सभा के सदस्य आदि) राज्य एवं जनता के नाम अपने मित्रों, रिश्तेदारों और भाइयों भतीजों के घर भरने लगे। अन्त में भांति भांति के भ्रष्टाचार-पूर्ण तरीके अपनाने लगे।

वर्ग के रूप में पूंजीवादियों और उनके व्यक्तिगत प्रतिनिधियों की स्थिति में आ जाने वाले इस परिवर्तन ने गांधी जी के साथ रगड़ पैदा की क्योंकि गांधी जी अब भी उन आदर्शों से चिपके हुए थे जिनका उन्होंने साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष के दिनों में प्रचार किया था।

अतः हम कह सकते हैं कि गांधी जी इसलिए राष्ट्रपिता बने कि उनका आदर्शवाद साम्राज्य-विरोधी संघर्ष के दिनों में पूंजीपति वर्ग के हाथों में एक व्यवहार्य और उपयोगी राजनीतिक हथियार था। वह जीवन के अन्तिम दिनों में पूंजीपति वर्ग से कमोबेश अलग-थलग हो गये क्योंकि स्वाधीनता के बाद के काल में उनका आदर्शवाद पूंजीपति वर्ग के स्वार्थ का राह का रोड़ा बन गया था।

गांधी जी की जीवन-लीला को समाप्त हुए लगभग १ वर्ष बीत चुके हैं। स्वभावतः प्रश्न उठता है कि गांधीवादी विचारधारा आज कहां खड़ी है?

इस सम्बंध में एक बड़ी ही दिलचस्प बात यह है कि यद्यपि गांधी जी के ऐसे अनेक निकट अनुयायी और सहकर्मी आज हमारे बीच हैं जो एक समय गांधीवादी दर्शन के मुख्य भाष्यकार माने जाते थे पर आज उनमें इस बात पर सहमति नहीं है कि गांधीवाद का सारतत्व क्या है। दैनिक जीवन की जटिल समस्याओं में गांधीवाद के प्रयोग के सम्बंध में भी उनके विचार भिन्न-भिन्न हैं। जैसा कि पुस्तक के आरम्भ में उल्लेख किया गया था गांधी जी के कई अनुयायी और शिष्य हैं और उनमें से हर एक यह दावा करता है कि वही गांधी जी की शिक्षा का वफादारी से अनुसरण कर रहा है और वह दूसरों की आलोचना करता है कि उन्होंने गांधी जी के आदर्शों के साथ विश्वासघात किया है।

यह भी दिलचस्पी की बात है कि यद्यपि गांधी जी के परस्पर भिन्न मत रखने वाले अनेक अनुयायी और शिष्य हैं, पर उन सबमें से एक आदमी ऐसा है जिसके बारे में सभी एकमत से कहते हैं कि वही महात्मा जी का सच्चा अनुयायी और उनका सच्चा उत्तराधिकारी है। वह आदमी है आचार्य विनोबा भावे। गांधी जी के जीवन-काल में उनके कई अन्य अनुयायी विनोबा भावे से कहीं अधिक प्रसिद्ध थे। केवल एक बार विनोबा भावे का नाम गांधी जी के सच्चे अनुयायी के रूप में

समूचे देश में प्रचारित हुआ था। यह १९४ की बात है जब गांधी जी ने उन्हें ही प्रथम व्यक्तिगत सत्याग्रही चुना था। लोगों को उस समय मालूम हुआ कि यह गांधी जी के सच्चे शिष्य और उनके आदर्शों एवं सिद्धान्तों का प्रसार और पालन करने वाले एक मौन और आत्मत्यागी कार्यकर्ता हैं।

इस घटना के दस से अधिक वर्षों के बाद विनोबा जी का नाम एक बार फिर मशहूर हुआ। १९५१ में उन्होंने भूदान आंदोलन आरम्भ किया। कहा गया कि स्वतंत्र भारत की सबसे महत्वपूर्ण समस्या भूमि समस्या के समाधान में गांधी जी के सिद्धान्तों का यह सच्चा प्रयोग है। जमींदारों से बलपूर्वक जमीन लेकर किसानों में बांटने के कम्युनिस्ट मार्ग के विरुद्ध इसे "करुणा का मार्ग" बताया गया। जमींदारों से जमीन चाहे कानून बनाकर वैधानिक उपाय से ली जाय जैसा कि कांग्रेस सरकारें सुझाव पेश कर रही थीं या किसानों के जंगी जन-आंदोलन के जरिए ली जाय जैसा कि कम्युनिस्टों ने तेलंगाना में करने की कोशिश की थी — दोनों ही मार्ग बुरे बताये गये। जिस तरह कभी अधिक बौद्धिक क्षमता रखने वाले लोग गांधी जी के पास जाते थे उसी तरह बहुत से शिक्षित लोग विनोबा जी के पास गये और जनशक्ति का उनका उपदेश सुना। विनोबा जी ने बताया कि जनशक्ति ही एकमात्र वह उपाय है जिसके जरिए जनता की भूमि तथा अन्य समस्याएं हल हो सकती हैं। सरकार के मंत्री विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक और ऐसे ही अनेक प्रमुख व्यक्तियों ने एक ऐसे आंदोलन के नेता के रूप में विनोबा जी का स्वागत किया जिसकी सफलता से अहिंसक उपायों के जरिए वर्गहीन और जातपात रहित समाज की स्थापना करने का उनका स्वप्न पूर्ण होगा।

एक इस बात को छोड़ कर कि सभी विनोबा भावे को अपने स्वर्गीय नेता का सच्चा शिष्य मानते हैं और किसी भी रूप में गांधी जी के शिष्य आज एकमत नहीं हैं। वर्तमान युग की विश्व समस्याओं को ही ले लीजिए। वर्तमान युग के गांधीवादियों में आपको एकदम विपरीत और विरोधी मत मिलेंगे। एक ओर वे लोग हैं जिन्हें कम्युनिस्टों के सहगामी की उपाधि से विभूषित किया जाता है, तो दूसरी ओर वे

लोग हैं जो सार्वजनिक रूप से नहीं तो कम से कम निजी तौर पर वे सारे मत दुहराते हैं जिनका दुनिया के कम्युनिस्ट-विरोधी प्रचार करते हैं। इसी तरह आन्तरिक अर्थतंत्र और राजनीति के सवालों के बारे में भी अपने को गांधीवादी कहने वालों में नाना प्रकार की रायें सुनने को मिलती हैं। इनमें से कई विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के सदस्य और नेता हैं। दूसरी ओर कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने उस समय गांधी जी का विरोध किया था जब वह साम्राज्य-विरोधी आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे पर जो आज अपने को उनका अनुयायी कहते हैं।

प्रश्न उठता है—गांधीवादी विचारधारा के अन्दर ऐसी उलझन और भ्रान्ति क्यों है? गांधी जी के अनुयायी आपस में लड़ क्यों रहे हैं? इतिहास में देखा गया है कि कोई नबी या पैगम्बर अपने जीवन काल में तो अपने शिष्यों को एकताबद्ध रखता है पर उसके मरने के बाद सब आपस में लड़ने-झगड़ने लगते हैं। क्या इतिहास की पुनरावृत्ति हो रही है? लेकिन अगर ऐसी बात है तो एक आदमी को (विनोबा भावे को) महात्मा जी का सच्चा अनुयायी और उत्तराधिकारी मानने में सभी एकमत कैसे हैं? दूसरे महात्मा जी के अनुयायी जब उनकी शिक्षाओं का आज की समस्याओं में प्रयोग करने के सवाल पर लड़ झगड़ रहे हैं तो फिर यह कैसे हुआ कि साम्राज्य-विरोधी संघर्ष के दिनों में गांधी जी का विरोध करने वाले आज उनके अनुयायी होने का दम भर रहे हैं?

इन सवालों का जवाब ढूंढने के लिए गांधीवाद के मूलतत्व को समझना आवश्यक है। सामान्यतः यह कहा जाता है कि गांधीवाद का मूलतत्व समाज की वर्तमान समस्याओं में सत्य और अहिंसा के नैतिक सिद्धान्तों को लागू करना है। बेशक यह सही जवाब होगा। लेकिन इससे फौरन ही एक नया सवाल सामने आ जाता है। क्या परम सत्य या परम नैतिकता जैसी कोई चीज है? क्या परम सत्य या परम नैतिकता को जीवन की वर्तमान समस्याओं में लागू करने के कोई स्थिर और अपरिवर्तनीय मार्ग हैं? दरअसल प्रथम विश्व युद्ध में भाग लेने को गांधी जी ने पाप नहीं कहा बल्कि फौजी रंगरूट भर्ती करके

उसमें अंग्रेजों की ओर से युद्ध सम्मिलित हुए। पर दूसरे महायुद्ध में उन्होंने कहा कि अपने को युद्ध से हर प्रकार से अलग न कर लेना पाप है। यह कैसे हुआ ? जो चीज प्रथम विश्वयुद्ध में नैतिक थी वही दूसरे विश्वयुद्ध में अनैतिक कैसे हो गयी ? इसी तरह गांधी जी ने १९२१ में सरकार को शैतान सरकार कहा था और विधान सभाओं का बायकाट करने का आह्वान किया था। पर बाद में उन्होंने अपने यथास्थिति-वादी अनुयायियों पर इस बात के लिए दबाव डाला कि वे स्वराजियों को विधान सभाओं के माध्यम से काम करने दें। यह कैसे हुआ ? या यह कैसे हुआ कि चौरीचौरा में जनता द्वारा हिंसा होने पर सविनय अवज्ञा आंदोलन बन्द कर देने वाले गांधी जी ने जनता पर कांग्रेसी सरकारों के गोलीबार का मौखिक समर्थन किया ? गांधी जी के इन परस्पर विरोधी रुखों के अन्दर क्या परम नैतिकता परम सत्य या परम अहिंसा जैसी कोई चीज थी ?

पीछे के पन्नों में हम इन सवालों को कई पहलुओं पर उठा चुके हैं। पुस्तक को समाप्त करते हुए अब इस पूरी बहस का निचोड़ पेश किया जा सकता है और कहा जा सकता है कि अन्य मानवों की तरह गांधी जी के लिए भी सत्य नैतिकता और अहिंसा परम नहीं बल्कि सापेक्ष वस्तुएं थीं। उनके सामने व्यापकतर हितों के अनुसार, एक ही चीज सत्य और नैतिक थी यह चीज थी शान्तिपूर्ण और अहिंसक उपायों से ब्रिटिश साम्राज्यवाद का खात्मा करना और वह हर चीज को इसी कसौटी पर परखते थे कि उससे इस सत्य और नैतिक चीज की प्राप्ति में सहायता मिलेगी या नहीं।

अतः अगर कोई यह कहता है कि गांधी जी परम सत्य और परम नैतिकता का अनुसरण करते थे तो वह सच्ची बात नहीं कहता। साथ ही यह कहना भी सचाई से परे होगा कि गांधी जी के अनुयायी और सहकर्मी गांधी जी के सिद्धांत और व्यवहार के परम भक्त थे। इसके विपरीत गांधी जी के अनेक अनुयायी और सहकर्मी रहे हैं जो निजी बातचीत में गांधी जी के "झक्कों" का मजाक उड़ाया करते थे। यह सुविदित है कि अहिंसा धर्म है या नीति इसे लेकर बहुत पहले भी और

गांधी जी के अनेक अनुयायियों ने कहा था कि अहिंसा गांधी जी के लिए धर्म है पर हम लोगों के लिए यह एक नीति मात्र है। यह बात खुद ही इस चीज को स्पष्ट कर देती है कि गांधीवाद के मूल सिद्धान्तों के बारे में गांधी जी और उनके अनुयायी भिन्न आस्थाएं रखते थे। गांधी जी इन सबको इसलिए एकताबद्ध कर सके कि उन्होंने सत्य अहिंसा आदि के सिद्धान्तों को साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष का नेतृत्व करने वाले वर्ग पूंजीपति वर्ग की धारणाओं के अनुसार लागू किया। गांधी जी ने एक बहुत बड़ी प्रवीणता का परिचय दिया। उन्होंने मेहनतकश आम जनता को अंग्रेजों के खिलाफ उभारा और एकताबद्ध किया पर साथ ही साथ इस आम जनता के कार्यकलाप को उन सीमाओं के अन्दर आबद्ध रखा जो पूंजीपति वर्ग के लिए निरापद थीं। उस वर्ग ने उनकी इस प्रवीणता को पसन्द किया। सत्य अहिंसा और नैतिकता के सिद्धान्तों को गांधी जी ने ऐसे ही खास ढंग से इस्तेमाल किया। इसलिए पूंजीपति वर्ग के सच्चे प्रतिनिधियों ने अपने नेता के रूप में उनका स्वागत किया यद्यपि उनके सिद्धान्तों को मीनमेख रखते हुए ही ग्रहण किया।

अगस्त १९४७ में परिस्थिति का पूर्ण परिवर्तन हो जाने के बाद उनके लिए यह आवश्यक न रहा कि वे अपने इस रुख को बरकरार रखें। अतः गांधी जी और उनके अधिकतर सहकर्मियों के बीच एक दरार पैदा हो गयी। उनके सहकर्मियों का खयाल था कि राजदंड अब हमारे हाथ में आ गया है इसलिए अब किसी जन-आंदोलन की कोई आवश्यकता नहीं है बल्कि जन-आंदोलनों से हमारे मार्ग में बाधा पड़ सकती है। समाज में जिन सुधारों की आवश्यकता है वे अब राज्यशक्ति के द्वारा लागू किये जा सकते हैं। पर गांधी जी में ऐसी आशावादिता न थी। जैसा कि पिछले अध्याय में बताया जा चुका है सत्ता-हस्तांतरण के पहले और बाद के कुछ महीनों में होने वाली नई घटनाओं से वे बहुत ही दुखी थे। उन्होंने नई परिस्थिति के अनुसार अपने सिद्धान्तों को पुनर्निरूपित करना आवश्यक समझा। इसी के अन्तर्गत उन्होंने कांग्रेस को समाप्त कर एक गैर-राजनीतिक संगठन लोक सेवक संघ स्थापित करने का प्रस्ताव रखा।

कांग्रेस-नेताओं ने उनका यह प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया। एक संगठन को राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए बरसों से लड़ा हो, अब प्राप्त राजनीतिक सत्ता को राष्ट्रीय विकास के लिए इस्तेमाल करने का सुयोग त्याग दे—यह बात उन्हें हास्यास्पद ज्ञात हुई। तब उन्होंने भारत का अपनी इच्छा के अनुसार पुनर्निर्माण करने के लिए राज्य-तंत्र का उपयोग करने का कार्यक्रम अपने सामने रखा।

पर गांधी जी के निकटतम शिष्यों के एक छोटे से दल ने उनके विचार को अपनाया। ये सर्व सेवा संघ के लोग थे। इन लोगों ने तय किया कि नये राजनीतिक ढांचे के अन्दर किसी पद की कामना नहीं करेंगे। मंत्री संसद सदस्य या विधान सभा की सदस्यता आदि पद उनके लिए त्याज्य हैं। वे गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम के जरिए जनता की सेवा में लगे रहेंगे। दूसरे शब्दों में जिस ढंग से गांधी जी स्वतंत्रता के बाद के युग में कांग्रेस को चलाना चाहते थे उसी ढंग से उन लोगों ने सर्व सेवा संघ को चलाया।

सर्वोदय कार्यकर्ताओं के इस क्रियाकलाप के फलस्वरूप ही आचार्य विनोबा भावे के नेतृत्व में भूदान आंदोलन शुरू हुआ। जिन परिस्थितियों में यह आंदोलन प्रस्फुटित हुआ वे अब सर्वविदित हैं। तेलंगाना के किसानों ने निजामशाही के खिलाफ विद्रोह किया था और निजाम-विरोधी संघर्ष के दौरान जमींदारों के शासन का खात्मा करके भूमि का पुनर्वितरण किया था। बाद में उनका मुकाबला कांग्रेस शासन के साथ हुआ जिसने निजामशाही का स्थान ग्रहण किया था। जमींदारों से छीनी जमीन को अपने हाथ में रखने की कोशिश करने वाले किसानों और किसान विद्रोह को दबाने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली पुलिस के बीच रक्तपातपूर्ण मुठभेड़ें हुईं। दर्जनों लोग गोली के घाट उतार दिये गये सैकड़ों गिरफ्तार करके जेल में डाले गये और संघर्ष के दौरान आतंकवादी साधन काम में लाये गये।

इन घटनाओं ने विनोबा भावे को यह सोचने को प्रेरित किया कि जनता को कष्ट से कैसे बचाया जा सकता है। उन्होंने ठेठ गांधीवादी हल निकाला। उन्होंने कम्युनिस्टों के नेतृत्व में किसानों द्वारा जमीन पर

कब्जा किये जाने की क्रान्तिकारी विधि का विरोध किया। उन्होंने कानून के मार्ग से कृषि सुधार करने की कांग्रेस सरकार की विधि का भी विरोध किया। उन्होंने कहा कि इन दोनों विधियों से सामाजिक समस्याओं को हल करने में हिंसा को प्रश्रय मिलता है। पहली विधि जन-आंदोलन की विधि है अतः उसमें हिंसा प्रत्यक्ष रूप से आ जाती है। दूसरी विधि में राज्यतंत्र का प्रयोग किया जाता है, जो वस्तुतः अल्पमत के विरुद्ध बहुमत के द्वारा संगठित शक्ति का उपयोग है। इन दोनों विधियों के स्थान पर उन्होंने भूस्वामियों द्वारा स्वेच्छापूर्वक भू-दान की विधि पेश की। उन्होंने यह नारा दिया कि हर आदमी अपनी भूमि का छठा भाग भूमिहीनों के लिए दान कर दे। भूमि-समस्या के हल के लिए राज्य-शक्ति की बजाय जनशक्ति का प्रयोग किया जाय यही भू-दान का सारतत्व है।

यही भूदान आंदोलन कई दौरों से गुजरता हुआ ग्रामदान आंदोलन बन गया। विनोबा जी को अब छठे भाग से ही सन्तोष नहीं वह चाहते हैं कि लोग अपनी पूरी सम्पत्ति का दान कर दें। ग्रामदान की बात करते समय उनके सामने नये ग्राम का जो चित्र होता है, वह संक्षेप में यह है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति मिटा दी जाय (आरम्भ भू-सम्पत्ति से करते हुए) किसी गांव की समूची भू-सम्पत्ति एकत्रित कर पूरे ग्राम समुदाय की सम्मिलित सम्पत्ति बना दी जाय गांव की सारी जमीन सम्मिलित रूप से जोती-बोयी जाय और उपज समानता के आधार पर बांटी जाय समूचे गांव की जनता के सम्मिलित हित में कुटीर उद्योग तथा धंधे के अन्य जरिए संगठित किये जायें।

यह सच है कि गांधी जी ने साम्राज्य-विरोधी संघर्ष के दिनों में देश की समस्याओं में जिन सिद्धांतों को लागू किया था यह उन सिद्धांतों को ही स्वतन्त्रता के बाद की मुख्य समस्याओं में लागू करना है। विनोबा भावे ने जनता के सामने जो लक्ष्य रखा वह किसी समाजवादी या साम्यवादी के लक्ष्य जैसा ही क्रांतिकारी है। यह "प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार" का वही बुनियादी सिद्धांत है जो मार्क्सवादियों के कथनानुसार समाजवाद

के उन्मूलन और अथवा उसके साम्यवादी दौर में ही प्रयुक्त हो सकता है। लेकिन मजदूर वर्ग के नेतृत्व में मेहनतकश जनता का लम्बा राजनीतिक संघर्ष उत्पीड़ित और शोषित वर्गों की शासित बहुसंख्या का शासक वर्गों में परिवर्तित हो जाना मेहनतकश जनता की राज्यसत्ता की स्थापना और उसके जरिए वर्ग विशेषों का उन्मूलन समाज की उत्पादन शक्तियों का इस हद तक विकास कि प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार का कथन व्यवहार्य हो जाय — इस प्रक्रिया के जरिए यह उद्देश्य नहीं पूरा किया जायगा। यह पूरा किया जायगा लोगों की समझा-बुझा कर, उनका हृदय परिवर्तित कर। यही ग्रामदान अथवा गांधीवाद के नवीनतम चरण का सारतत्व है और यही मार्क्सवाद से उसका अन्तर भी है।

विनोबा जी और उनके अनुयायियों का दावा है कि ग्रामदान आंदोलन के जरिए उन्होंने देश की सामाजिक समस्याओं का एकमात्र संभव और सही हल ढूंढ निकाला है। पर उनका यह दावा न कांग्रेस नेताओं ने स्वीकार किया है न कम्युनिस्ट पार्टी और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी आदि वामपक्षी पार्टियों ने। वे मानते हैं कि निजी भू-सम्पत्ति जैसी बुराइयों के विरुद्ध विनोबा जी के प्रचार और समूचे ग्राम-जीवन को पुनःसंगठित करने की आवश्यकता के बारे में उनके उपदेशों से सामाजिक-आर्थिक कायापलट की प्रक्रिया को सहायता प्राप्त होगी। पर साथ ही वे बताते हैं कि राज्य-यंत्र का प्रयोग किये बिना यह कायापलट नहीं हो सकती। विनोबा जी और उनके नेतृत्व में ग्रामदान आंदोलन ने चाहे जितनी भी सफलताएं प्राप्त की हों यह तथ्य अपनी जगह पर कायम है कि बड़े जमींदार व्यक्तिगत भू-सम्पत्ति के उन्मूलन के उनके आह्वान से विशेष प्रभावित नहीं हो रहे हैं। मैसूर में विनोबा जी ने ग्रामदान आंदोलन पर विचार करने के लिए राजनीतिक नेताओं का एक सम्मेलन आयोजित किया था। इस सम्मेलन ने स्पष्ट कर दिया कि विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के नेता ग्रामदान आंदोलन के साथ पूरी हमदर्दी रखते हुए भी यह नहीं मानते कि यह आंदोलन ही एकमात्र रास्ता है और भूमि सुधार सहकारिता आंदोलन संगठित करना आदि काम करने की

सरकारी पहल अनावश्यक है। वे एक राय से इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि विनोबा जी का स्वैच्छिक आंदोलन और सरकारी कार्रवाइयाँ एक-दूसरे की पूरक हैं।

इस सम्बंध में मार्के की बात यह है कि गांधी जी के जीवन काल के उनके सर्वप्रमुख सहकर्मियों का बहुमत ग्रामदान आंदोलन में वही आस्था नहीं रखता जो विनोबा जी और उनके सहकर्मी रखते हैं। वे इस आंदोलन को देश के सामाजिक-आर्थिक रोगों की महौषध नहीं मानते। जनशक्ति में कम और राज्यशक्ति में अधिक विश्वास रखनेवाले ये वही लोग हैं जिनका विभिन्न मौकों पर और विभिन्न सवालों के ऊपर गांधी जी के साथ मतभेद उठा करता था। विधान सभाओं और चुनावों के प्रति रुख के सवाल पर, युद्ध में सम्मिलित होने या न होने के सवाल पर, या कांग्रेस को लोक सेवक संघ बना देने के सवाल पर इन लोगों के गांधी जी से भिन्न मत थे। यह बड़े ही महत्व की बात है क्योंकि इसका अर्थ यह है कि इन लोगों के द्वारा गांधी जी को अपना नेता तथा गांधीवादी दर्शन को अपने क्रियाकलाप का आधार माना जाना राजनीतिक सत्ता-प्राप्ति के लक्ष्य की पूर्ति का साधन मात्र था। सत्य अहिंसा नैतिकता आदि के गांधी जी के उपदेशों को उन्होंने केवल इसलिए अंगीकार किया था कि इससे राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के उनके लक्ष्य की पूर्ति में मदद मिलती थी। आज भी वे राजनीतिक सत्ता और उसके प्रयोग का परित्याग करने को तैयार नहीं हैं, क्योंकि व्यावहारिक बुद्धि रखने वाले यथार्थवादी होने के नाते वे अनुभव करते हैं कि सामाजिक-आर्थिक सुधार के किसी भी आंदोलन की सफलता अथवा विफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि राजनीतिक ताकत किसके हाथ में है और किस प्रकार उसका इस्तेमाल होता है।

जहाँ तक कम्युनिस्टों समाजवादियों और वामपंथियों का सवाल है, उनके लिए तो यह बात स्पष्ट है कि सामाजिक-आर्थिक क्रियापलट के संघर्ष में राजनीतिक ताकत एक मूलभूत उपकरण है। मार्क्सवाद के संस्थापकों ने एक शताब्दी पहले ही घोषित किया था कि कोई वर्ग स्वेच्छा से सत्ता का परित्याग नहीं करता। इक्के-दुक्के व्यक्ति विनोबा